साधु वेष में एक पथिक

प्रवचन-सार

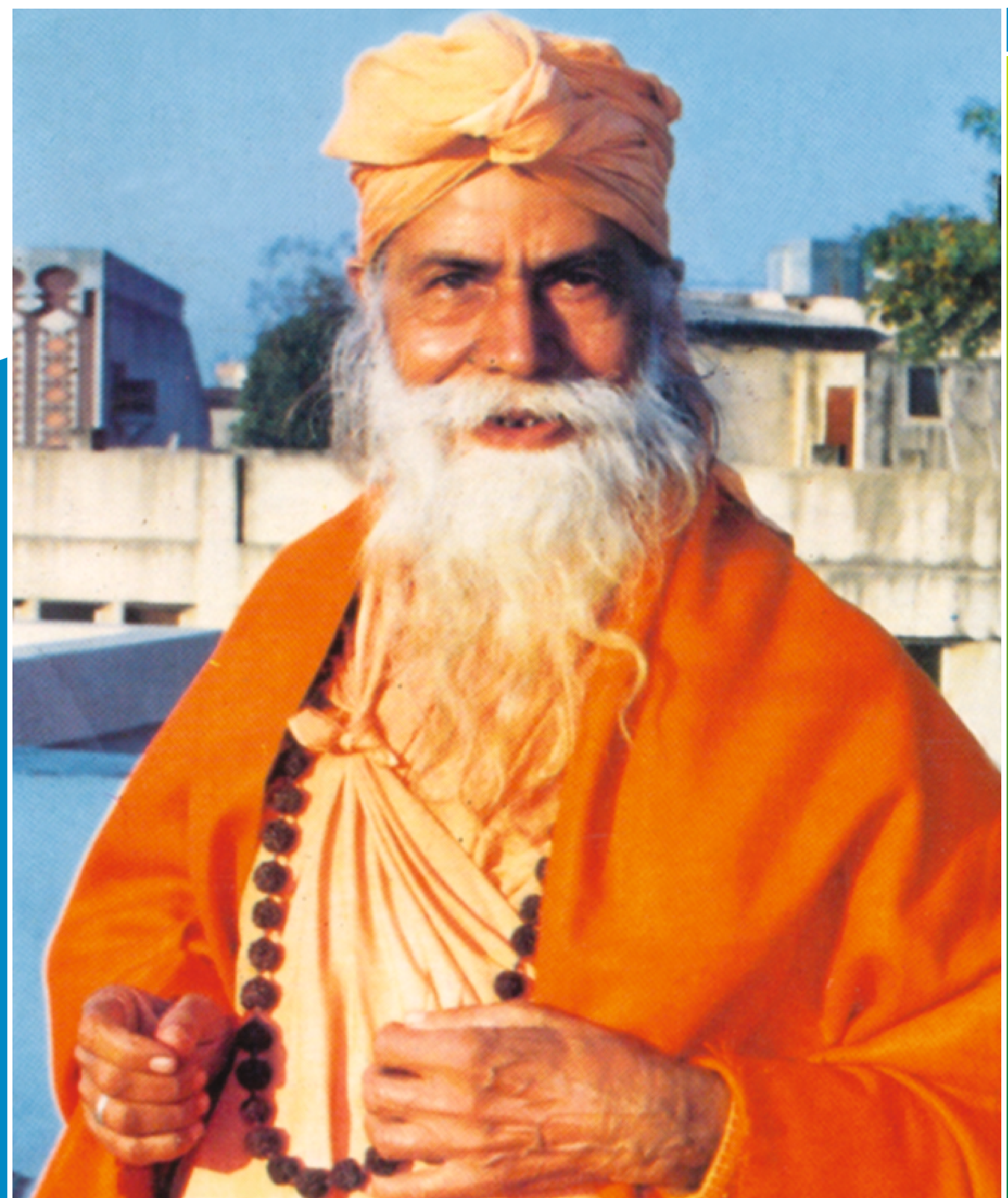

साधु वेश में पथिक का संक्षिप्त परिचय

आपके शरीर का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मण कुल में हुआ था। बाल्यावस्था ननिहाल में व्यतीत हुई। वहीं पर कुछ शिक्षा प्राप्त की। आरम्भ से ही आपके हृदय में ग्रामीण देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा जागृति थी। विश्वास था कि मंदिर में अथवा देवी-देवताओं के दर्शन से विद्या प्राप्त होती है।

बाल्याकाल से ही किसीसे उपदेश सुने बिना भगवान के नाम जप स्मरण में विश्वास था। आरम्भ से ही एक परमहंस अवधूत सन्त में श्रद्धा हो गई जो नग्न ही घूमते थे। कोई वस्त्र न रखते थे। स्नान के पश्चात् खाक लगा के जल सुखाते थे उसे विभूति कहते थे।

पूर्व जन्मों में संस्कारों से प्रेरित होकर भूमि, भवन, धन से वैराग्य हो गया और सब कुछ छोड़कर साधुवेष में विचरण करते हुए अनेक कवितायें लिखीं। एकान्त सेवी होने के कारण पद्य के साथ-साथ गद्य लिखना आरम्भ हुआ। लगभग पचास पुस्तकें छपीं। व्याख्यान के प्रति गीत गान के प्रति श्रोताओं का आकर्षण बढ़ता ही गया। मान-प्रतिष्ठा, पूजा भेंट से सदा विरक्त रहकर विचरण करते हुए आध्यात्मिक विचारों का समाजव्यापी प्रचार बढ़ता गया लेकिन विचारों की प्रधानता से विचारक समुदाय की वृद्धि होती गई। परमहंस संत सद्गुरुदेव की आप पर बहुत कृपा थी। आरम्भ में ब्रह्मचारी नाम से प्रसिद्ध थे फिर ''साधुवेष में एक पथिक'' नाम से कल्याण में लेख छपते रहे। पथिकोद्गार के तीनो भाग एक ही में संकलित पुस्तक में 285 गीत तथा उसी गीत का सार संत वचन के रूप में प्रकाशित है। दो बार छप चुकी है।

Creative Point # 9839028276

श्री अनिमेश जी। ता० ३० पत्र मिला मैं बहराइच में १ अगस्त से एकान्त मौन का नियम ले रखा है किसी से मिलता नहीं हूँ। भोजन और डाक लेने का प्रबन्ध एक कक्ष में है। एकान्त की अच्छी सुविधा है। अब शायद ५ अक्टूबर को यहाँ से चलना होगा बहुत प्रोग्राम है।

आप जब भगवती का आश्रय ले चुके हैं तब परेशानी व्यर्थ है सब कुछ उसी पर छोड़ दो अपने में उसी की शक्ति को उसी के ज्ञान को उसी के प्रेम अथवा गुणों को देखो वह सभी का कल्याण कर रही है उसके द्वारा अपार ऐश्वर्य सबका हित हो रहा है जैसे जिसका हित होना है वही जानती है यह अहंकार नहीं जानता यही बीच में चाहने लगता है यही सब कुछ चाहता है तुम बन्धन मुक्ति कुछ न चाहो जो वह दे जहाँ रखे वही स्वीकार कर लो। और देखते जाओ कि परिणाम में होता क्या है हानि लाभ सुख दुख पाप पुण्य सब मानने से लगते हैं मान लिया है। जो नहीं मानते वह शान्त हैं। आत्मा सत है चेतन है आनन्द है वही तुम हो परन्तु अहंकार देहमय बन रहे हैं यही अज्ञान में है।

[signature]

अनिमेश जी।

पत्र सिरसा (हरियाणा) से मिला

परमात्मा तुम्हारा परमाश्रय है उसी की तुम लहर हो। उसी के विधान से सब कुछ हो रहा है अहंकार झूठ ही मालिक कर्ता बन रहा है तुम उसी पर निर्भर रहो जो आज है उसी पर राजी रहो कल जो होगा वह भी देख लिया जायेगा। प्रभु की शक्ति से सब हो रहा है। आनन्द से जियो। अतीत और भविष्य का मननचिन्तन तुम्हारे वर्तमान को स्वच्छ न रखेगा इसलिये सजग रहो। शान्त मौन आत्मा ही शान्ति का स्रोत है

निष्क्रियता से मौन से कर्ता न बनने से जो स्वतः हो रहा है उसको द्रष्टा होकर देखते रहने से समर्पण पूर्ण होता है।

अहंकार के गलने पर सत्य जीवन प्रगट होता है

द्वन्द्वों में सम रहा जा सकता है बचा नहीं जा सकता

तुम दुख सुख दोनों के लिये राजी रहो

तभी शान्ति आनन्द की अनुभूति होगी।

काम क्रोध लोभ की पूर्ति के लिये बहुत शक्ति चाहिये लेकिन ध्यान से देखने के लिये श्रम की अपेक्षा नहीं है।

नरक के लिये बहुत श्रम होता है स्वर्ग के लिये तो बहुत सहज पथ है।

मन से बहुत कुछ पकड़ा जाता है परन्तु मन को और मन के पीछे कोई सजग साक्षी ही देख पाता है।

तुम्हीं परमात्मा की शक्ति हो। तुम्हीं परमात्मा के ज्ञान स्वरूप हो तुम्हीं परमात्मा की चेतनमय प्रीति किरण हो। नित्य निरन्तर परमात्मा में हो हो।

[signature]

।। परमात्मने नमः ।।

प्रवचन - सार

लेखक

साधु वेष में पथिक

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

ॐ

।। परमात्मने नमः ।।

प्रवचन-सार

विषय-क्रम

क्र.सं.	विषय	क्रम
1.	प्रार्थना	1
2.	परमप्रभु सब उर बासी हैं (भजन)	2
3.	प्रवचन सार	3
4.	सुन्दर मानवता निर्माण के लिये	33
5.	साधन का सदुपयोग	39
6.	सन्त वचन	58
7.	जिज्ञासा	59
8.	जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते	60
9.	भगवान तुम्हारे चरणों में	61

संशोधित संस्करण : 2013

लागत मूल्य रु.

प्रकाशक

श्री स्वामी पथिक अखिल भारतीय दातव्य सेवा समिति

28, विधान सभा मार्ग, लखनऊ -226 001

प्रार्थना

लिये चलो सत पथ में शक्तिमान लिये चलो।।
अधः पतित जीवन को हे महान लिये चलो।।

हर लो हे ज्योतिर्मय मेरा अज्ञान तिमिर।।
जिससे शुभ गति मति हो चंचल चित हो सुस्थिर।
देकर हे करुणामय दिव्य ज्ञान लिये चलो।।

मिट जायें अन्तर के सब दुर्दमनीय दोष।
प्रभु–प्रदत्त सद्गुण से हो मम निष्कलुष कोष।।
मिल जाये हमको भी प्रेम दान लिये चलो।।

वह बल दो जिससे मैं तृष्णा को सकूँ त्याग।
जग के नश्वर सुख में रह जाये कुछ न राग।
उसी तरह जैसा कुछ हो विधान लिये चलो।।

हे मेरे जीवनेश तुम से ही है पुकार।
अब तो जिस भाँति बने भवदुख से करो पार।
'पथिक' पूर्व पापों पर दो न ध्यान लिये चलो।।

परमप्रभु सब उस वासी हैं।।
विनाशी में अविनाशी हैं।।

न पाते भोगी प्रभु का भेद।
उन्हे घेरे रहते भय खेद।
वृत्तियाँ इन्द्रिय दासी हैं।। परम०।।

प्रभु कृपा से मिटता अज्ञान।
चतुर्दिक दिखते नित्य महान।
निरन्तर आनन्द राशी हैं।। परम०।।

जहाँ होता सब कुछ का अन्त।
वहीं प्रभु पूर्ण अखण्ड अनन्त।
सर्व में स्वयं प्रकाशी हैं।। परम०।।

जहाँ मिल जाता ज्ञानालोक।
न रहता लोभ मोह शोक।
पथिक हृद वीचि विलासी हैं।। परम०।।

प्रवचन-सार

विनाशी शरीर में रहने वाली अविनाशी आत्माओ! अभी तक जो कुछ सुनी है उसी को माना है और उसी के अनुसार बुद्धि में ज्ञान बड़ा है, उस ज्ञान के अनुसार तुम कर्म कर रहे हो, किये हुए कर्म के फलों को ही अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में भोग रहे हो।

यदि तुम दुःख से, भोग से बचना चाहते हो तो माने हुए सुख की आसक्ति का त्याग करो। सुखासक्ति का त्याग करना चाहते हो अविनाशी के योग में जो आनन्द का अनुभव होता है उसे जानो।

आनन्द को देखे बिना यदि सुख का त्याग करोगे तो त्याग का अभिमान बढ़ेगा। आनन्द को जान लोगे तब सुख की आसक्ति स्वतः छूट जायेगी। जो हीरा को पा लेता है उसे ताँबे का पैसा छोड़ने की याद भी नहीं आती। जो पाता कुछ नहीं और पाने की आशा में कुछ त्याग करता है वही अपने को त्यागी मान कर दूसरों को त्याग की बात सुनाता दिखाता फिरता है।

श्रद्धा परमेश्वर की कृपा से प्राप्त होती है। जिन मनुष्यों के हृदय में श्रद्धा नहीं है वे सन्त, महात्मा, गुरू के आगे झुक ही

नहीं सकते। इसी प्रकार जिन मनुष्यों के हृदय में प्रभु कृपा से प्राप्त उदारता नहीं है वह करोड़ों की सम्पति होने पर भी दान दे ही नहीं सकते। जिनके हृदय में ईश्वरी गुण क्षमा नहीं है, वह सहिष्णु रह कर क्रोध का त्याग कर ही नहीं सकते।

जिस हृदय में प्रभु प्रदत्त प्रीति का उदय नहीं है वे द्वेष विरोधादि दोषों का त्याग कर ही नहीं सकते।

जिनकी बुद्धि में प्रभु कृपा से विवेक जाग्रत नहीं है वे मोह से, भ्रम से, बन्धन से रहित हो ही नहीं सकते।

मनुष्य में जितने भी दोष हैं, वह प्रभु कृपा से प्राप्त होने वाले सद्‌गुणों एवं ज्ञान की कमी के कारण विद्यमान रहते हैं। जैसे-जैसे विवेक ज्ञान बढ़ता जाता है सद्‌गुण बढ़ते जाते हैं दोष विकार मिटते जाते हैं।

मूढ़ मनुष्य प्रकृति से या पुरुषोत्तम भगवान से धन की, मान की, पदाधिकार की, भोग सामग्री की, याचना करता है।

मूढ़ता से रहित यथार्थदर्शी पुरुष सदा दया, क्षमा, करूण उदारता, सहिष्णुता, नम्रता, निष्कामना, श्रद्धा, सद् विवेक आदि दैवीगुणों के लिए प्रार्थना करता है।

यह गुरू सम्मति है कि तुम समस्त सद्‌गुणों के लिए श्रद्धा विवेक निष्काम प्रीति के लिए समर्थ प्रभु से प्रार्थना करो।

सन्त सावधान करते हैं कि जो तुम्हें विवेक ज्ञान प्राप्त हैं उसका उपयोग मान, भोग, धन, ऐश्वर्य के लिए ही न करते रहो प्रत्युत उसका सदुपयोग दोषों के त्याग में शुभ सुन्दर वस्तुओं के दान में करो। जिस शक्ति सम्पत्ति अधिकार के द्वारा अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हुए भोगी बने हो उसी के द्वारा विवेक पूर्वक दूसरों की सेवा करते हुए विकारों दोषों के त्यागी बनें।

धन सम्पत्ति परिवार को छोड़कर बन में रहने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यक है लोभ, मोह, मान काम, क्रोध का त्याग करना। लोभ, मोह, मान, काम, क्रोध का त्याग तभी हो पाता है जब साधक विनाशी के परे अविनाशी को जान लेता है, न रहने वाली बदलने वाली देह में नित्य एक रस रहने वाले आत्मा को जान लेता है। जब तक मैं पने का अभिमान और मेरा पने का मोह करता रहता है तब तक आत्मा परमात्मा की एकता का बोध नहीं होता।

सन्त की सन्मति है कि देहादिक विनाशी वस्तु में अपने को रखकर 'मैं' मानना छोड़ दो और किसी सम्बन्ध अधिकार को अपने में रखकर 'मेरा' मानना छोड़ दो तभी अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होगा।

स्वरूप के यथार्थ ज्ञानानुभूति के लिए ध्यान में होना आवश्यक है। ध्यान में होने के लिए अपने आप ही होने वाले

ध्यान का अथवा स्वतः उठने वाले चित्तवृत्तियों एवं मन की स्मृतियों को द्रष्टा बनकर देखते रहना होगा।

ध्यान के लिए स्थिर आसन में बैठ जाओ या लेटे ही स्वतः होने वाली प्राणों की गति को देखो। नाभि के फूलने को और पिचकने को मानसिक दृष्टि से देखते रहो। यदि मन में चंचलता हो तो उसे भी देखते रहो उससे लड़ो नहीं जो ध्वनि सुनाई दे उसे सुनते रहो। तुम कुछ न करो। जो कुछ स्वतः हो रहा हो उसे देखते सुनते रहो। पुनः यह खोज करो कि शरीर के भीतर अपना स्थान, अपना स्वरूप, रंग नाप तौल क्या है? किसी से बाहर न पूछो भीतर ही इस प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा करो, तुम केवल वाणी से, मन से, बुद्धि से भी मौन ही रहो।

एक सन्त से मैंने सुना था कि वाणी के मौन से शक्ति बढ़ती है, मन के मौन से अर्न्तदृष्टि खुलती है, बुद्धि के मौन से, स्व' का सत्य तत्व की अनुभूति होती है।

भाग्यवश जिससे निकट सम्बन्ध है उनके अधिकार की पूर्ति करते रहो स्वयं अपने अधिकार को छोड़ दो, तुम किसी से कुछ न चाहो। तुमसे कोई अपनी पूर्ति चाहता हो तो हो सकने वाली बात पूरी करते रहो।

सन्त प्रवचनों से यह भी समझ में आया है कि निष्काम होकर कर्तव्य पालन से अथवा सेवा करते रहने से अन्तःकरण

शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होने पर तत्व ज्ञान होता है। तत्व ज्ञान होने पर ही प्रज्ञा स्थिर होती है। प्रज्ञा के स्थिर होने पर ही परमानन्द का प्रयत्न उपासना है और बौद्धिक प्रयत्न में ज्ञान योग की सिद्धि है।

जब तक साधक को अर्थात हमको तुमको धन हानि का दुःख होता है, अपमान का दुःख होता है, इन्हीं का भय होता है तब तक मूढ़ता है। मूढ़ता के रहते शास्त्र सन्त गुरुजनों की प्रेरणा पूर्णतया नहीं मानी जाती, साधन भजन में आराधना उपासना में छल कपट दम्भ मिलता रहता है।

मूढ़ता के रहते पुरुष का दर्शन होता ही नहीं। जब तक देह रूपी पुरी में रहने वाले पुरुष का दर्शन नहीं होता तब तक पुरुषोत्तम योग होना सम्भव नहीं है। मूढ़ व्यर्थ में ही नहीं, अनर्थ में जीता है।

मूढ़ता के रहते बुद्धि दृष्टि विवेक प्रकाश में काम नहीं करती इसीलिए साधक की उपासना पूजा, आराधना तथा गुरु की तथा इष्ट की निकटता भोग बन जाती है योग नहीं हो पाती।

हम सब साधकों को मूढ़ता को दूर करने के लिए अपने मन की रुचि पूर्ति का पक्ष न लेकर गुरु आज्ञा का पालन करना चाहिए। गुरू आज्ञा के पालन में अपने मन की प्रतिकूलता भले ही हो परन्तु उससे किसी का अहित नहीं होता है प्रत्युत अपना

परम हित होता है।

हमारी भावना, हमारी साधना, उपासना, सेवा तथा प्रीति हमारे विचार एवं हमारे कर्म हमारा त्याग, तप, दान, ज्ञान जब वीतराग सन्त को उचित लगे तब तो सन्तोष की बात है। जब तक हमको ही हमारी साधना, पूजा, उपासना, आराधना तपस्या अच्छी लगती है तब तक हम मनसा भोगी बने हुए हैं।

यह सन्त सन्मति है कि स्वच्छन्द होकर साधन भजन सेवा न करों जो कुछ समझ में आया हो जो कुछ करते हो या करना चाहते हो उसे वीतराग तत्व ज्ञानी महात्मा के आचार्य के समक्ष रख कर निर्णय अवश्य ले लो।

अपने -अपने ज्ञान का अभिमान प्रायः सभी को होता है पर यथार्थ ज्ञान के आधार पर सत असत का दर्शन किसी बिरले ही निरभिमानी साधक को होता है।

सन्त का निर्णय है कि जब प्रतिकूल परिस्थिति में अर्थात अपमान मे, हानि में, वियोग में, मृत्यु में शान्त सम स्थिर रह सको तभी तुम योगी हो। जहाँ समता भंग हो जाय शान्ति के स्थान को अशान्ति घेर ले भय चिन्ता से बुद्धि भ्रमित हो जाय तभी समझ लो कि तुम भोग की सीमा में ही भ्रमण कर रहे हो योग की भूमिका में नहीं हो।

सन्त से मैंने सुना है कि अपना निरीक्षण सावधान होकर

उस समय करो जब तुम्हें कुछ सुनकर, या देखकर अथवा किसी से मिलकर या कुछ पाकर अत्यधिक हर्ष हो रहा हो या फिर हर्ष के विपरीत क्षोभ हो रहा हो शोक छा रहा हो।

यदि तुम गुरु विवेक द्वारा सावधान होकर देख सको तो अकस्मात होने वाले हर्ष को या शोक को सुख को या दुख को तथा सम्मान को अपमान को, मन की स्थिरता को या चन्चलता को, कदाचित भड़क उठने वाला क्रोध को ईर्ष्या द्वेष को अथवा स्नेह को तटस्थ होकर द्रष्टा बन कर देखते हो।

जिसे तुम द्रष्टा बन कर तटस्थ रह कर देखोगे उसी से असंगता प्राप्त होगी। किसी से मिलकर भोग हो जाता है उससे अलग रहने की दशा पर दर्शन हो जाता है। तुम सुख दुख के, हर्ष शोक के भोक्ता न बनो प्रत्युत द्रष्टा बनो।

शरीर इन्द्रियां मन बुद्धि के धर्म-कर्म को देखते हुए अपने को संग सम्बन्ध से रहित अनुभव करो। एक सन्त ने हमें समझाया कि जो कुछ अनेक है वही संसार है। इच्छायें, वासनायें विचार कल्पनायें तथा दृश्य अनेक हैं यही सब संसार की परिधि में हैं। विवेक चैतन्य, ज्ञान, प्रेम एक है वही एक 'मैं' हूँ के स्वरूप में विद्यमान है। अनेक से सम्बन्ध मान लेना ही बन्धन है और कुछ भी अपने में स्वीकार न करना मुक्ति है।

सन्त ने यह भी दिखाया कि अनेकता की लहरों के नीचे

एकता का शान्तिमय धरातल है।

वहिर्मुखता अनेक में ले जाती है अन्तर्मुखता एक में ले जाती है।

चित्त भले ही अनेक है पर चेतना तो अनेक के पीछे एक ही है उसीमय हम हैं।

साधना के आचार्य ने यह भी समझाया कि तुम संसार के समर्पित होकर जो कुछ भी माँगोगे वह प्रभु से मिलेगा केवल समर्पित होने का साहस चाहिए।

ध्यान रखना परम प्रभु के समक्ष केवल अपने 'मैं' को समर्पित करना होता है और संसार के समझ जो प्रभु से मिला है उसे अर्पित करना होता है।

जो कुछ तुम्हें मिला है वह तो स्वयं ही छूट जावेगा तुम्हें अर्पित करने की आवश्यकता ही न होगी।

अपने को समर्पित करने का साहस कर सको तो अपने 'मैं' के स्थान पर पूर्ण प्रभु को पा जाओगे।

एक सन्त से मैंने सुना था कि जो मिटने को तैयार होता है वह पूर्ण हो जाता है। जो मरने को तैयार हो जाता है वह जीवन पा जाता है।

जब 'मैं' नहीं रह जाता तब जो शेष रहता है वही प्रभु है।

हमें समझाया गया कि प्रभु के स्मरण पूजा उपासना में ‘स्व’ को भुला कर सन्तोष न करो प्रत्युत ‘स्व’ का बोध प्राप्त कर ‘मैं’ को मिटा दो तब केवल ‘स्व’ की भूमि में अनन्त प्रभु शेष रहेंगे।

हमें यह भी समझाया गया कि तुम्हारा शरीर भूमि में है क्योंकि भूमि की ही जाति का है परन्तु शरीर के भीतर जो चेतना है वह अनन्त चिन्मात्र तत्व की है वह अनन्त से तन्मय होना चाहती है।

मनुष्य का शरीर एक दीपक की भाँति है और चेतना दीपक में जलती हुई लौ की भाँति है। मिट्टी के दीये में ध्यान रहा तो जीवन व्यर्थ है। सन्त कहते हैं कि दीपक की ज्योति में ध्यान रहना चाहिए तब इस चैतन्य ज्योति में ही अनन्त प्रभु के दर्शन होते हैं।

सन्त ने यह युक्ति बताई कि तुम शरीर से इन्द्रियों से मन से न लड़ो इनका साथ छोड़ो इनसे अपनी पूर्ति न करो अपना काम न बनाओ इन्हें देखते रहो जो कुछ स्वतः हो उसे देखते रहो। देखते रहने में दृश्य शान्त होंगे। विचार शून्य होंगे उसे शून्यता में ही आत्मा का अनुभव होगा। चित्त के सब आधार जो छोड़ देता है वह प्रभु का आधार पा जाता है जो शून्य होने की शक्ति नहीं जुटा पाते उनके समक्ष सूनापन ही रह जाता है। शून्य से ही सत्याश्रय मिलता है जो कल्पित आश्रय में अटके रहते हैं वे प्रभु

के नित्य योगी नहीं हो पाते।

तुम शून्य चैतन्य होकर अनन्त चैतन्य सिन्धु में मिले हुए अनुभव करो।

जब मन में व्यर्थ संकल्प विकल्प एवं व्यर्थ विचार उठते हों तब प्रभु के प्रचलित नाम अथवा मन्त्र का अधिक से अधिक जप करना चाहिए। सन्त ने हमें समझाया कि नाम या मन्त्र जप की संख्या पूरी करके ही सन्तोष न करो मन्दिर में दर्शन करते कदाचित् कभी भावावेश में अश्रु निकलने लगे तब इसे भक्ति की अच्छी अवस्था न समझ लो।

गीता के बारहवें अध्याय में तेरहवें से बीसवें श्लोक तक जो लक्षण बताये हैं उन्हें अपने में पूर्ण करो।

भगवान का निर्णय है कि अभिमान अहंकार मोह के रहते संगी सम्बन्धी जनों में ममता रखते हुए कामनाओं की पूर्ति में समय शक्ति नष्ट करते हुए रागी द्वेषी व्यक्ति को परम पद अव्यय पद एवं भक्ति मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

मुक्ति भक्ति शान्ति एवं अव्यय पद की प्राप्ति के लिए मान मोह का त्याग करना ही होगा। संग के प्रभाव से बचकर कामनाओं को छोड़ते हुए ज्ञान स्वरूप गुरु के आश्रय में रह कर अपने आप से ही प्रभु की प्रतिष्ठा का विश्वास दृढ़ रखना होगा। अपने स्वयं में संग रहित स्वयं में प्रभु की उपासना करनी होगी।

मुझे सुनाया समझाया गया है कि ऐ साधकों! तुम जिस संसार में रचे पचे हो यह पीपल के वृक्ष के समान है। इसकी जड़े ऊपर की ओर हैं और शाखायें नीचे की ओर फैली हुई हैं, तुम्हारा जीवन पीपल के पत्ते में चमकते हुए बिन्दु के समान अस्थिर है। प्रथम तो अपने जीवन की अति लघुता पर विचार करो, साथ ही जिसका आश्रय ले रखा है उसके तक भी न आने वाले अस्तित्व पर विचार करो।

यदि होश आ जाये तो विचार पूर्वक वैराग्य धारण करो पुनः असंगता रूपी शस्त्र द्वारा जड़ों को काट दो।

किसी नाम रूप के साथ मिलकर 'मैं' मानने से अभिमान बढ़ता है और 'मेरा' मानने से मोह बढ़ता है। 'मैं' और 'मेरापना' ही हृदय की ग्रन्थि है यह ग्रन्थि खुल जाय तभी मुक्ति है।

मूढ़ता दूर होने पर मैं के स्थान तू ही तू और मेरा के स्थान पर तेरा ही तेरा दिखने लगता है। फिर मैं मेरा का अभिमान मोह नहीं रह जाता।

मोह मान माया के बन्धन से छूटने के लिए सतत गुरु विवेक का आश्रय लिये रहो।

सदा प्रभु के गुणों का अनन्त ऐश्वर्य असीम माधुर्य का चिन्तन करो व्यक्ति के दोषों का चिन्तन मनन न करो किन्तु

इतने में साधन की पूर्णता न मान लेना।

अपने भीतर प्रभु सम्बन्धी भावों विचारों को भरे रहो मन को खाली न रक्खो। खाली रखने से संसार प्रपंच घुस जायेगा। जितनी बुराइयाँ होती हैं वह सूनेपन में ही होती हैं। सूने पन में ही जुआ होता है अनाचार चलता है चोरों डाकुओं के अड्डे बनते हैं इसीलिए बुराइयों से बचना है मन में पवित्र भाव भरे रहो सुसंगति में घिरे रहो सदा शुभ कर्म में लगे रहो अवकाश मिलते ही प्रभु के ध्यान में स्व के अध्ययन में नाम स्मरण जप में समय को सार्थक करो व्यर्थ में ही अनर्थ होता है।

खाली करना है तो केवल अपने आप को खाली करो मन को खाली रक्खो। शून्य में उतरना है तो तुम स्वयं शून्य में एकाकी उतरो शून्य में किसी अन्य को साथ न ले जाओ अर्थात् मन बुद्धि के साथ भी शून्य में न उतरो।

संग से ही काम उत्पन्न होता है मन इन्द्रियों के संग में काम की सीमा आती है अपने आप को मन से असंग कर लेने पर काम का प्रवेश नहीं होता। सन्त ने सावधान किया है कि तुम निरन्तर राम में ही हो, मन काम में है इसलिए मन को राम में लगाओ या फिर मन का संग छोड़कर स्वयं को राम में अनुभव करो।

भगवद् भक्ति करोगे तभी कामनायें दूर होंगी गुरु शरण में

रहने से संग–दोष दूर होगा। गुरु विवेक द्वारा आत्मा के ज्ञान से मान मोह की निवृत्ति होगी।

एक महात्मा ने बताया कि ज्ञान आगमन पर जो व्यर्थ है वह स्वतः छूट जाता है। अज्ञान में जो कुछ बाहर से छोड़ा जाता है उससे भीतर सम्बन्ध बना ही रहता है।

बुद्धि के द्वारा जो कुछ समझा जाता है वह जानकारी है। ज्ञान अपने आप में प्रगट होता है जब कुछ अन्य नहीं रह जाता है तब केवल ज्ञान मात्र शेष रह जाता है वही सत्य आत्मा है। उस आत्मा में अहं की सीमा का मिटना समाधि है। सन्तन ने समझाया कि समाधि का अर्थ बेहोशी मूर्छा नहीं है–परिपूर्ण चैतन्य का अनुभव समाधि है। विचारों के विलीन होने पर यह समाधि होती है।

विचार की तरंग जब नहीं उठती तब ज्ञान चैतन्य का द्वार खुला मिलता है। विचार अज्ञान की सीमा में रहते हैं।

यदि बुद्धि में विवेक जाग्रत है तो 'स्व' को जानो और स्वधर्म को जानो और 'स्व' में प्रतिष्ठित प्रभु की सत्ता महत्ता को जानो।

हमें आचार्य ने समझाया कि आत्म–ज्ञान ही स्वधर्म है। प्रभु से भिन्नता की प्रतीति न होना अथवा पूर्ण भक्ति भक्त का

स्वधर्म है। सतसंग ही जिज्ञासु का स्वधर्म है।

धर्म की साधना व्यक्तिगत है पर उसका परिणाम समाज पर पड़ता है तब उसका आचरण भी प्रकाश में आते हुए समाज पर प्रभाव डालता है जिसके भीतर अंधेरा है उसकी गति में भी प्रकाश का परिचय नहीं मिलता।

दूसरों के सामने धार्मिक दिखना भक्त दिखना, दम्भ के सहारे सम्भव है। वास्तव में धार्मिक होना, साधु होना, भक्त होना, अपने लिए परमाश्यक है।

असत् संग से कुछ बना जाता है दूसरों की दृष्टि में दीखता है परन्तु सत्संग में बनावट नहीं आती सत्संग के अर्थ स्वयं का संग सत संग। जब असत संग छूटता है तब सत्संग होता है। असत संग में पराधीनता है सत्संग में स्वाधीनता है जहाँ हम हैं वहीं सत्संग हो सकता है। बहुधा हम व्याख्यान सुनने को ही सत्संग मान लेते हैं और सत् का संग तो हो नहीं पाता व्यक्ति का संग करते हुए रागी और दूसरे व्यक्ति के द्वेषी बन जाते हैं। सत्संग में किसी की उपेक्षा नहीं है श्रवण मनन के पश्चात् केवल अपने द्वारा ही सत्संग नित्य निरन्तर सुलभ रह सकता है। असत् से असंग होने पर सत्संग होता है।

सन्त ने हमें समझाया कि असत्य हिंसा काम क्रोध को त्यागने का प्रयास अज्ञान में ही चलता है तुम इन्हें दूर करने के

लिए इधर–उधर न भागो अपने भीतर देखो और अपना अज्ञान दूर करो। अपना अज्ञान ही अहंकार अभिमान मय काम क्रोध हिंसा के रूप में अपने को घेरे हुए हैं। आप विकारों से न लड़ें प्रत्युत अज्ञात को जाने असत् को जाने और सत परमात्मा के अनुभव के लिए चित्त को शान्त होने दें, शून्य होने दें, विचार रहित होने दें और निर्विकार होने दें।

हम आत्म कल्याण के लिए एकान्त स्थान में जाते हैं ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं कुछ भावना के चित्र बनाते हैं कुछ कल्पना में तृप्ति मानते हैं परन्तु इसमें अव्यय पद की शाश्वत शान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

एक सन्त कह रहे थे शास्त्रों में सत्य नहीं संकेत है सत्य तो स्वयं में ही है। सत्य कोई दे नहीं सकता वह तो प्राप्त ही है केवल अहंता ममता के आवरण के भीतर उतरना है।

शास्त्रों द्वारा संसार को जान लो सत्य का बोध तो अपने ही द्वारा होगा। प्रायः हम सबके साथ अनेकों के साथ हैं पर एक अपने साथ नहीं है। जो साधक केवल अपने साथ होता है अन्य कोई नहीं रहता तो देह के भीतर अपने आप में एकान्त मिलता है उस एकान्त में ही ‘स्व’ में ही सत्य का साक्षात् होता है। बाहर अनेक हैं भीतर एक है बाहर दृश्य है भीतर साक्षीदृष्टा है बाहर शत्रु है भीतर कोई शत्रु नहीं शक्तियाँ हैं–ऐसा सन्त ने हमें

समझाया है।

परम गुरु भगवान का कल्याणकारी उपदेश आदेश है कि-संसार में प्रिय सम्बन्धियों के संयोग में, इन्द्रियों के विषय भोग में, धन अधिकार में सुख मानने वाले, सावधान होकर समझ लो-तुम्हारे सुख का अन्त दुःख में होगा क्योंकि जो कुछ तुम्हें मिला है वह किसी समय अवश्य ही छूट जायेगा।

तुम सम्यक प्रकार से समझ लो कि जो कुछ भी देह, इन्द्रियाँ मन बुद्धि तथा धन अधिकार परिवार मिला है वह तुम्हारा नहीं है, क्योंकि तुम्हारा किसी वस्तु तथा व्यक्ति पर अधिकार नहीं है तुम सदा किसी को साथ रख ही नहीं सकते तथा किसी के साथ रह नहीं सकते।

जो कुछ तुम्हें मिला है वह तुम्हारा नहीं है परन्तु जिसके विधान से मिला है वह अवश्य तुम्हारा है, क्योंकि वह तुमसे कभी, कहीं दूर होता ही नहीं है। वह नित्य निरन्तर प्राप्त है, किन्तु उसे मूढ़ जन नहीं देख पाते। वह तो उन्हें अनुभव होता है जिनके ज्ञान चक्षु खुल गये हैं।

ज्ञान चक्षु खोलने के लिए ही ज्ञान की आवश्यकता है, गुरु ज्ञान ग्रहण करने के लिए सात्विक श्रद्धा की अपेक्षा है।

नित्य प्राप्त परम प्रेमास्पद प्रभु की प्रिय आत्माओं! प्रत्येक मनुष्य आनन्द चाहता है। आनन्द से ही सन्तुष्ट होना चाहता है,

और उससे ही पूर्ण प्रीति करता है जिससे आनन्द पाने की आशा रखता है।

प्रत्येक मनुष्य जहाँ कहीं दुखी दीखता है वहाँ आनन्द का आश्रय छिन जाने का तथा छूट जाने एवं न मिलने से ही दुखी होता है।

दुःख का एक मात्र कारण अज्ञान है। अज्ञान यही है कि आनन्द का प्यासा प्राणी यही नहीं जानता कि आनन्द का सत्य आश्रय कहाँ है? वह विनाशी में आनन्द प्राप्ति की कल्पना करता है विनाशी का सहारा लेता है इसीलिए विनाशी के रहने पर अविनाशी आनन्द की खोज में आज तक जीव यात्रा कर रहा है।

प्रभु कृपा से ही यह अवसर सुलभ हो रहा है कि हम इस प्रकार विनाशी व अविनाशी के भेद को समझने के लिए एकत्रित किये गये हैं। इस कृपा का सदुपयोग भी कृपा द्वारा ही सम्भव है हम उसी की शरण लें।

जो शरण से रहित रहेंगे वही मरण का दुःख भोगते रहेंगे। हमें समझाया गया है कि-

शरीर इन्द्रियाँ मन बुद्धि तथा अहंकार के पीछे जो विशुद्ध चेतना है जो सब कुछ का नित्य निरन्तर आश्रय है वही परमात्मा है। वह परमात्मा ही अपने योग माया के द्वारा अनन्त ऐश्वर्य, अगाध माधुर्य एवं असीम सौन्दर्य के रूप में जब अभिव्यक्त होते

हैं तब उन्हीं को सर्वेश्वर भगवान कहते हैं।

संसार में जो कुछ भी होता आया है या वर्तमान में जो कुछ हो रहा है, या भविष्य में जो कुद होगा, उसके पीछे सर्व समर्थ की इच्छा है उसकी ही शक्ति है उसी की प्रेरणा है।

अहंकार वश प्राणी उस सर्व समर्थ से विमुख होकर भले ही अपने को कर्ता, धर्ता, भर्ता, मानता रहे, परन्तु प्रत्येक प्राणी में जो कुछ शक्ति है, ज्ञान है, प्रेम है तथा भाव है सर्व शक्तिमान का ही है। यह समझ में तभी आता है जब परमेश्वर की कृपा से प्राणी परमेश्वर के सन्मुख होता है।

जीव स्वच्छन्दता पूर्वक जो कुछ करता है, उसके पीछे उस अनन्त की ही शक्ति है। किसी कर्म का फल जब न चाहते हुए जीव को भोगना पड़ता है, इसके पीछे उसी की प्रेरणा है और जीव को अपनी इच्छा के विपरीत जो कुछ देखना पड़ता है उसके पीछे प्रभु की कल्याणकारी इच्छा समझना चाहिए।

अनन्त की शक्ति से ही जीव की सुखद कामनायें पूरी होती हैं, उस समर्थ की प्रेरणा से ही कर्मयोग के लिए परिस्थिति रूप साधन सामग्री सुलभ होती है, उसी की इच्छा से ही जीव को संसार बन्धनों से मुक्ति मिलती है, उसकी कृपा से ही भक्ति योग सुलभ होता है।

हम सभी के लिए यह स्मरण रखने योग्य सत्य है कि संसार

में जहाँ कहीं प्रतिकूलता का दुःख मिलता है वह प्रभु की कृपा है।

सुखोपभोग में आसक्त होकर जीव सर्व समर्थ प्रभु से विमुख हो जाता है, वहीं पर दुःखाघातों से भोगी जीव उसके सम्मुख होकर योगी हो जाता है जिसे देख नहीं पाता।

एक अनुभवी सन्त ने हमे बताया कि जिसे हम नहीं जानते वही अपना सर्वस्व है क्योंकि वह हमें जानता है। हमें विश्वास रखना चाहिए कि अपना परमाश्रय एक परमात्मा ही है, और वह हमारी प्रत्येक चेष्टा के, प्रत्येक विचार के साथ ही है, वह हमारे विचारों के मध्य में ही विद्यमान रहता है, उसका अनुभव हम पूर्ण मौन, शान्त, शून्य होकर ही कर सकते हैं।

जिसे 'स्व' का ज्ञान नहीं, सत्य आत्मा का परमात्मा का ज्ञान नहीं,। जो मिली देहादिक वस्तु के संग से देह के रूप को ही अपना रूप मानता है, वह मूढ़ है। जब तक ज्ञान चक्षु नहीं खुलते तब तक 'स्व' का, आत्मा का सन्त महात्मा का दर्शन नहीं होता। वाह्य आकृति को आँखों से देखना-सत्य दर्शन अथवा सन्त दर्शन एवं 'स्व' दर्शन नहीं है। पुरुष जब अपने स्वरूप को जान लेता है तभी पुरुषोत्तम योग का अधिकार होता है।

पुरुषोत्तम प्रभु ने पाँच बातें गीता में बताई हैं-

(१) जो कुछ नाशवान दृश्य जगत है, उससे वे परे हैं।

(२) वे अक्षर परा प्रकृति जीव से और कारण प्रकृति से अथवा अक्षर ब्रह्म से भी उत्तम पुरुषोत्तम हैं।

(३) तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सबका भरण पोषण करते हैं।

(४) सबके नाश होने पर भी उनका नाश नहीं होता। वह अविनाशी हैं।

(५) वे सबके स्वामी हैं।

इन पाँच विशेषताओं वाले पुरुषोत्तम को ज्ञान चक्षु वाला ही जानता है। वही सर्वविद् है, वही सर्व भाव से भजन करता है।

संसारासक्त जनों से जो कुछ सुना जाता है, उससे देहाभि मान की लोभ की मोह एवं कामना की ही वृद्धि होती है। हर एक मनुष्य सुन-सुन कर ही पुत्र, भाई, पति, पिता अथवा पुत्री भगिनी, पत्नी, सास आदि अनेकों नाम रूप का अभिमान लिये रहता है, परन्तु अपने रूप को नहीं जानता।

सन्त और शास्त्र की बात सुनोगे और मानोगे, तब तुम्हें विदित होगा कि इस नव द्वारों वाली देह रूपी पुरी में रहने वाले तुम केवल पुरुष हो, और तुम्हारा परमाश्रय सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम है। उसका नित्य योग सुलभ है, परन्तु अनित्य वस्तुओं के संयोग से वह नित्य योग ढका हुआ है, पुरुष और पुरूषोत्तम

का जातीय सम्बन्ध है। परन्तु पुरुष को इसीलिए उस नित्य सम्बन्ध का पता नहीं है, क्योंकि वह नाम रूप के सम्बन्ध में अटका हुआ है, यह है जीव का घोर अज्ञान। अज्ञान मिटे बिना जीव के पाप बन्धन दुःख नहीं मिटते।

अविनाशी आत्मा परमात्मा के नित्य योग में मिलने वाले आनन्द को जानने के लिए, विनाशी देहादि वस्तु को सम्पत्ति को, अधिकार को, सम्बन्धित व्यक्तियों से प्रीति हटाकर अविनाशी आत्मा के प्रति प्रीति करो।

आत्मा, परमात्मा के प्रति प्रीति मोड़ने के लिए आत्मा परमात्मा के विषय में ही आत्म ज्ञानी एवं परमात्मा के भक्तों से श्रवण करो या फिर सन्तों भक्तों की कही हुई बातों का अध्ययन करो।

जिन कानों के द्वारा मन लगा कर संसार के नाम रूप, प्रपंच की चर्चा सुनने में समय दिया है, उन्हीं कानों के द्वारा मन लगा अब बुद्धि योग पूर्वक सतचर्चा, आत्मा की चर्चा, एवं धर्म चर्चा सुनते हुए, बचे हुए जीवन के समय को सार्थक करो। कदाचित जिस शक्ति के द्वारा अनेकों पाप कर्म बनते आये हैं, उसी शक्ति के द्वारा सावधान रह कर पुण्य कर्म करते रहो। जहाँ स्वार्थ का संकल्प पूरा किया है, वही अब सेवा का संकल्प पूर्ण करने में तत्पर रहो।

जिस शक्ति के द्वारा अनेकों भोग के संकल्प पूरे होते आ रहे हैं, उसी शक्ति से परमात्मा का नित्य योगानुभूति का संकल्प पूर्ण करो।

जब तक परमार्थ चर्चा, धर्म की महिमा व सेवा की महिमा सुनने के पश्चात उसकी पूर्ति तथा प्राप्ति का दृढ़ संकल्प नहीं होगा तब तक जो त्याग आवश्यक है, जहाँ तप आवश्यक है, जहाँ दान एवं दया आवश्यक है, वह पूर्णतया नहीं हो पायेगा।

जब प्रपंच कथा, परचर्चा के प्रभाव से मनुष्य प्रपंची, रागी, द्वेषी एवं भोगी बन सकता है, तब तुम भी सत्कथा, सत्चर्चा योगचर्चा सन्तसंग के प्रभाव से परमार्थी, सत्यानुरागी प्रभु प्रेमी योगी हो सकते हो केवल दृढ़ संकल्प कर लो कि आत्मा, परमात्मा की चर्चा कथा तथा महत्ता श्रवण करते हुए अब 'स्व' को 'मैं' को एवं आत्मा को ही जानना है। कुछ करना है तो सेवा ही करना है। प्रेम करना है तो प्रभु से ही करना है।

अशुभ संकल्पों का त्याग करो शुभ संकल्प प्रभु की कृपा से पूर्ण होंगे। वे संकल्प अशुभ हैं जिनकी पूर्ति के साधन सुलभ नहीं हैं, जिनकी पूर्ति किसी व्यक्ति की सहायता से पराधीनता पूर्वक होती है।

वे संकल्प अशुभ ही नहीं पाप मय भी है, जिनकी पूर्ति करते हुए किसी का अहित होता है, किसी को हानि का, अपमान

का, वियोग तथा अभाव का दुःख होता है।

दूसरों की सेवा करना, दान करना, तीर्थ यात्रा करना सन्तों का संग करना, तथा एकान्त सेवन करना शुभ है। उन सभी शुभ कृत्यों से पुण्य बढ़ते हैं। परन्तु अविवेक पूर्वक, एवं मूढ़ बुद्धि से इन शुभ संकल्पों की पूर्ति में किसी के पुण्य बढ़ने की अपेक्षा, पूर्व के किए हुए पुण्य घटते हैं।

मैंने कुछ ऐसे सुखी धन सम्पन्न लोगों को देखा है, कि जो मोटर कार से तीर्थ यात्रा सन्त दर्शन करते हुए जितना धन का खर्च अपने सुख-सुविधा में करते हैं, प्रायः उस अनुपात से दान नहीं कर पाते। उनके पुण्य घटते हैं पर बढ़ नहीं पाते।

यदि तुम्हारे भीतर तीर्थ यात्रा का संकल्प उठे तो सर्व प्रथम अपने निकट तथा आस-पास किसी विरक्त तत्ववेत्ता सन्त की खोज करके उनका संग करो, और तीर्थों में जाने की अपेक्षा अपने भीतर जीवन की ओर, जड़ता से चेतना की ओर, पाप से पुण्य की ओर, अनित्य से नित्य की ओर, असत् से सत् की ओर लौटो। स्वयं ही तीर्थ स्वरूप होकर अपने संग से दूसरों को पवित्र बनने की प्रेरणा लेने दो।

तीर्थ जाने का अवसर अनायास सुलभ हो जाय तब तीर्थ में विरक्त सन्त महात्मा एवं प्रभु प्रेमी भक्तों का संग करते हुए अध्यात्म ज्ञान प्राप्त करो।

ज्ञान में, और बुद्धि द्वारा शास्त्रों की जानकारी में बहुत अन्तर है। जानकारी से अभिमान की वृद्धि होती है। इसीलिए शास्त्र वेद के रटने वाले प्रायः अभिमान पूर्वक वाद विवाद में अपनी योग्यता का परिचय देते हैं।

ज्ञान अपना प्राप्त करना तथा जानकारी शास्त्रों से करनी है। जानकारी सुन कर, पढ़कर होती है ज्ञान देखकर होता हे।

ध्यान रहे जब तक असत अनित्य विनाशी का संग है, तब तक मन मोह लोभादि दोष नहीं छूटेंगे। दुःख सुख संयोग, वियोग आदि द्वन्दों में बुद्धि विमोहित रही तो, सत्य का दर्शन नहीं होगा।

असंग होने पर ही बुद्धि स्थिर होती है, चित्त शान्त और शून्य होता है, तभी उसका साक्षात् होता है जो जड़ देहादि वस्तुओं से परे हैं। किसी सरोवर में लहरें उठ रही हों तो उसके भीतर जो कुछ है उसे देखना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार जब तक चित्त वृत्तियों से अशान्त है तब तक सत्य का ध्यान सम्भव नहीं होगा।

हम जो कुछ दूसरों से छिपाते हैं, वह छिपाने से मिटते नहीं, ढक जाते हैं, दब जाते हैं और अनुकूल अवसर पर वही उमड़ आते हैं।

सन्त ने समझाया कि तुम किसी के सहारे किसी भीतर की,

वस्तु को, विचार को, भाव को, अनुचित वृत्ति को छिपाओ नहीं उसका निरीक्षण करो।

ध्यान से निरीक्षण करो, निरीक्षण से स्व का तथा पर का ज्ञान होगा। ज्ञान से मुक्ति मिलेगी। छिपाने दबाने से मुक्ति नहीं मिलेगी।

सन्त की यह भी सम्मति है कि अपनी स्वीकार की हुई कल्पनाओं भावनाओं, के साँचें में ढले सत्य के साकार रूप को सत्य का दर्शन कह सकते हो परन्तु इस दर्शन में आकार आपका है जिसमें तत्व प्रकाशित दीखता है वह वास्तविक दर्शन नहीं है।

सन्त की सम्मति है कि शान्त बैठ जाओ। शरीर से शान्त बैठने का शरीर के भीतर जो कुछ स्वतः हो रहा है, तटस्थ होकर देखो कोई निर्णय आग्रह निग्रह न करो, बस देखते रहो। इस निरीक्षण से चेतन द्वारा अचेतन में प्रवेश होता है। इस अन्तः प्रवेश से ही जो कुछ चेतन में वासना व कामना इच्छा द्वेष लोभ मोहादि विकार हैं उनकी जड़े दिखेंगी। उन्हें देखकर घबरा न जाना बाहर की ओर न भागना, व दृष्टि न बन्द करना और निरीक्षण मात्र करते रहना यहाँ शान्ति एवं धैर्य की परीक्षा देनी होगी इस अचेतन स्तर से ही कामना व वासना से मुक्ति का द्वार मिल जाता है।

सुख की चाह ही मनुष्य को कर्म के लिए प्रेरित करती है। संसार में जितनी भी हलचल है, जितने भी मेल मिलाप है जितने भी कलह, विरोध व संघर्ष हैं सब सुख के लिए हैं। जहाँ तक सुखोपभोग है वहाँ अहंकार है।

सभी प्राणी विषय सुख चाहते हैं। सुख के अंत में दुःख भोग कर उससे आगे के सुख की कामना करते हुए बढ़ते हैं।

मनुष्य स्वर्ग का सुख चाहते हैं, विशेष पुरुष ब्रह्मलोक का सुख चाहते हैं। विचारक ज्ञानी आत्मसुख से सन्तुष्ट होते हैं। भक्त परमात्म सुख चाहते हैं।

जो किसी प्रकार का सुख नहीं चाहते हैं, कुछ भी नहीं चाहते उन्हें निर्वाण पद की प्राप्ति होती है।

हमें सन्त ने समझाया कि जब तक स्वरूप को जान कर असंगता न प्राप्त करोगे, तब तक अविद्या की निवृत्ति नहीं होगी, जन्म मरण से छुटकारा नहीं मिलेगा अतः 'स्व' को जानो, पर के दृश्य के तटस्थ रह कर साक्षी बनो।

गीता में भगवान ने समझाया है कि अज्ञानी मूढ़ों को शुद्ध आत्मा का दर्शन अनुभव नहीं होता।

जो विशेष सावधान रह कर आत्म निरीक्षण करता है जो बाहर का दृश्य देखता और भीतर दृश्य का आश्रय व आधार

देखता है, जो बाहर काम, क्रोध, लोभ, मोहादि, विकार देखता है, और अचेतन स्तर पर इन विकारों की जड़ों को देखता है, वही द्रष्टा हृदय में विद्यमान आत्म तत्व को शून्य शान्त समाहित होकर अनुभव करता है। किन्तु जिसका चित्त मूढ़ है, क्षिप्त, विक्षिप्त है वह बाहर विविध साधन द्वारा प्रयन्त करते हुए भी नहीं देख पाता है।

सावधान होकर समझ लो-परमात्मा तुम्हारी सभी दशाओं में विद्यमान है। वह भोग में रोग में, आधि व्याधि में-जहाँ कहीं तुम हो वहीं वह छिपा है। इसी प्रकार तुम जब उसे पुकारते हो तो पुकार के ही बीच में है, जब उसे खोजते हो तब खोज के साथ ही मिला है, जब व्याकुल होते हो तब व्याकुलता के मध्य में वह है। जब तुम कुछ नहीं करते हो, जब कुछ नहीं होते तो कुछ नहीं बनते हो तब समक्ष हो सकता है।

भगवान का निर्णय है कि या तो स्वयं समझ कर सब कुछ पूर्ण करो, या फिर उपदेश पर श्रद्धा रखते हुए करने दो। कुछ साधक न समझते है न समझाने वालों के अनुसार चलते हैं मनमानी साधना चुनते हैं, और अपने को सन्तुष्ट करते हैं इसीलिए साधन, भजन, पूजन प्रार्थना, जप तथा व्रत ध्यान आदि करते हुए मोह, मान, लोभ एवं काम रहित नहीं हो पाते। दुःख से, भय से, चिन्ताओं से एवं द्वन्द्वाघातों से, समय समय पर

व्यथित होते रहते हैं।

अपने स्वभावानुसार, मान्यतानुसार, जानकारी के अनुसार, त्रिगुण मयी प्रकृति के अनुसार संगानुसार तथा संस्कारानुसार सभी के गतिविधि तथा स्वीकृति में भेद रहता ही है, इसीलिए विचारवान साधक को गुरुविवेक का आश्रय लेकर आत्म निरीक्षण करना चाहिए।

एक सन्त से पूछा गया ध्यान किसका करें? उत्तर दिया अपना ध्यान करो। सर्व प्रथम जो कुछ चाहते हो उसकी पूर्णता का दृढ़ संकल्प करो, सतत प्रतीक्षा करो।

पुरुष के लिए जो सर्वोपरि उत्तम है वह सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन परम तत्व है उसी का योग पुरुषोत्तम योग है। उस पुरुषोत्तम परमात्मा में ही जिसकी पूर्ण प्रीति है, जो उसमें तृप्त है, सन्तुष्ट है उसे किसी अन्य कार्य की अपेक्षा नहीं रहती किन्तु जो देहादि पदार्थों में आसक्त है, उन्हें प्रथम धर्म की शरण लेनी चाहिए। तप पवित्रता दया सत्य-यह चार चरण धर्म के कहे गये हैं किन्तु कलिकाल में गर्व आसक्ति, मद इन के द्वारा धर्म के तीन चरण नष्ट हो रहे हैं।

कुछ यहाँ पुरुष श्रेष्ठ धर्म, भगवद् भक्ति बता रहे हैं। भक्ति से ज्ञान वैराग्य स्वतः आ जाते हैं परन्तु भक्ति का विवेक भी सन्त शरण एवं भगवद् कृपा द्वारा ही होता है।

जब अपने आप में पूर्ण प्रेम के रूप में प्रभु नित्य प्राप्त अनुभव में आते रहें तभी भक्ति की पूर्णता होती है।

नित्य प्राप्त का दर्शन ही ज्ञान है नित्य प्राप्त से निरन्तर मिलन ही भक्ति है।

जब तक झूठ का सहारा लिया जाता है किसी प्रकार के बल का मद बना हुआ है, काम की प्रधानता है, रजोगुण प्रबल है, जब तक शान्ति, मुक्ति, भक्ति के साम्राज्य में स्थान नहीं मिलता। धर्ममय जीवन नहीं हो पाता।

वास्तव में धर्ममय जीवन वही है जो जड़मय न रहकर चिन्मय हो, प्रभुमय हो। एक ही धर्म है जो सबको धारण कर रहा है, उसी के आश्रय से गति, परमगति, परमशान्ति, मुक्ति, भक्ति, परमानन्द की प्राप्ति होती है उस एक धर्म को जानने वाला ही धर्मात्मा होता है। अनेक धर्म को मानने वाला तत्ववित् आत्मवित् नहीं होता।

एक सन्त ने हमें समझाया कि तुम अपने लिए और कुछ भी न करो केवल कामना का त्याग कर दो कुछ भी न चाहो, संसार से ही नहीं, भगवान से भी कुछ न चाहो भक्ति, मुक्ति, आनन्द, कुछ भी न चाहो-चाह का त्याग करते ही तुम्हें क्या प्राप्त होता है, वह स्वयं ही देखोगे परन्तु कुछ देखने की भी इच्छा न कर बैठना।

चाह रहित होने पर जो कुछ तुम्हारे साथ शरीर मन बुद्धि रह गये हैं उन्हें संसार की सेवा में लगा देना इन्हें अपना मानकर नहीं, संसार की वस्तु समझकर संसार को सौंप देना।

तीसरा सम्बंध तुम्हारा परम प्रभु से है उन्हें केवल एकमात्र प्रेम सौंप देना, क्योंकि प्रेम उन्हीं का है उस प्रेम के द्वारा ही तुम प्रभुमय हो सकते हो इसके अतिरिक्त और कुछ तुम्हारे साथ देने योग्य अर्पण, योग्य है ही नहीं।

सुन्दर मानवता निर्माण के लिए

तुम शिक्षित हो, तुम में अच्छे प्रकार से कार्य करने की योग्यता है। फिर भी अशिक्षितों के प्रति अथवा विधि-विहीन कार्य करने वालों के प्रति बर्ताव करते हुए सावधान रहो, कहीं असभ्यता-पूर्वक उनसे कोई बात न करो। अशिक्षितों से घृणा न करो। अपनी विद्या का, योग्यता का अभिमान न आने दो। उनके साथ गम्भीरता-पूर्वक बात करो। उनकी हंसी न करो। उनकी भूल समझा दो। वे तुम्हारी बात न मानेंगे, तब भी तुम अपना कर्तव्य पूरा कर दो। जब अशिक्षित व्यक्ति कभी विद्वान बनेंगे तब वे भूलें, वे चोरियाँ, वे अपराध न करेंगे जो आज छिप-छिप के किया करते है; फिर भी उन भूलों को चोरियों को छिपा नहीं पाते।

तुम्हें किसी दुखी पर दया करने दुर्बल की सहायता करने, भूले भटके को राह बताने, किसी शोकित भ्रमित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति करने, किसी प्रकार की सेवाओं के, जितने अधिक अवसर मिलेंगे उतनी ही अधिक तुम्हारी उन्नति होगी अर्थात् तुममें सुन्दर सद्भावों-सद्गुणों का विकास होगा।

एक महीने के भीतर, एक वर्ष के भीतर जितनी अधिक

बार तुम क्रोध करोगे, जितनी अधिक बार तुम दूसरों के प्रति घृणा करोगे, या ईर्ष्या-द्वेष करोगे, जितनी बार निर्धनों को देखकर धन का अभिमान, निर्बलों के सामने बल का अभिमान, अशिक्षितों के सामने विद्या का अभिमान, किसी के दोष देखकर अपने में गुणों का अभिमान करोगे उतनी ही अधिक मात्रा में इन सब दोषों की पुष्टि होती जायगी। गुणों की परिवृद्धि हो, परिपुष्टि हो। ऐसे अवसरों से अपने को दूर हटाते रहो जिनके द्वारा दोषों की वृद्धि होती है।

यदि तुम जीवन को सुन्दर, श्रेष्ठ बनाना चाहते हो तो सदा उस अवसर को ताकते रहो जबकि अपनी किसी प्रकार की शक्ति तथा योग्यता से दूसरों के काम आ सको।

जब तुम किसी निर्धन को देखो तब उसे दरिद्र, नीच, तुच्छ न समझो, बल्कि यह देखो कि तुम उसके साथ क्या सहायता कर सकते हो।

अशिक्षितों से मजदूरों से, ताँगें-रिक्शे वालों से, दो-चार आने के लिए झगड़ा, झिक-झिक न करो। सेवको से, मजदूरों से, सवारी वालों से प्रथम ही कार्य और उसका मूल्य निश्चित कर लो। श्रम से कम पैसा न दो और पैसे से अधिक श्रम न लो। दीनों, दुखियों बुद्धिहीनों पर दया करो।

अपने नौकरों से, सेवकों से, व्यर्थ वार्ता न करो। उन्हें ढीठ न बनाओ। साथ ही तुच्छ नीच मानकर उनसे घृणा भी न करो। जिस कार्य को दूसरों की सहायता से पूरा करना हो, उसे तुम स्वयं ही सबसे प्रथम आरम्भ कर दो।

किसी को जो वस्तु प्रिय है अथवा जो कोई व्यक्ति प्रिय है, पूज्य है, तुम उसका अनादर न करो। किसी श्रेष्ठ महापुरुष का अथवा बड़ों, गुरुजनों का जब नाम लेना पड़े तब नाम के प्रथम ''श्रीमान'' ''पूज्यपाद'' आदि विशेषण अवश्य लगा लो तब नाम लो। बड़ों का नाम लेकर न पुकारो।

किसी मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि स्थानों का अपमान न करो। यदि तुम्हारे हृदय में श्रद्धा न हो तब भी दूसरे साथी की प्रसन्नता के ही लिए देव स्थान को नमस्कार कर लो। इसमें तुम्हें कोई श्रम न पड़ेगा और दूसरे की प्रसन्नता प्राप्त हो जायगी।

किसी की बुराई सुनने की रुचि न रक्खो। यदि सुनाई पड़ जाय तो किसी की बुराई दूसरों को न सुनाओ यदि किसी के षड़यन्त्र से, किसी की धोखेबाजी से सावधान करना हो तो अवश्य कह दो। परन्तु किसी के घरेलू दोषों का, अपवाद का वर्णन न करो।

कभी किसी प्रकार के खेल में किसी से हार जाओ तो उससे द्वेष-ईर्ष्या न करो और किसी को हरा दो तो उसे देखकर अभिमान प्रकट न करो, बल्कि ऐसे ढ़ंग से प्रीतियुक्त बर्ताव करो जिससे उसे हारने का दुःख न हो।

किसी मित्र के यहाँ या पड़ोसी के यहाँ या किसी गरीब के यहां कोई ऐसा काम हो जिसमें दूसरों की सहायता की आवश्यकता हो तो तुम बिन बुलाये जाकर उससे पूछ लो, उसे सहयोग दो।

तुम्हारे साथी किसी कामकाज में तुम्हारी सहायता न करें तो बुरा न मानो। उचित समझो तो उनके सहायता न कर सकने का कारण पूछ लो।

अपने प्रति दूसरों का जो कुछ कर्तव्य है उसे न देख कर दूसरों के प्रति जो तुम्हारा कर्तव्य है उसे देखो और पूरा करते रहो- ऐसा करने के लिए तुम स्वतंत्र हो।

किसी सभा में जोर से डकार न लो। अधिक खाँसी किसी को आती हो तो सभा के पीछे जाकर बैठना चाहिए सभा में किसी प्रकार की व्यर्थ चेष्टा, अनावश्यक क्रिया न करना चाहिए, किसी वक्ता के बोलते समय बात न करो। यदि बात करना आवश्यक हो तो अलग हट कर या फिर कान में कहो

जिससे कि आवाज न हो।

निश्चित समय में होने वाले कार्यों के लिए पहले से तैयार रहो। समय का सदा आदर करो।

दूसरों की सेवा करने में उदार बनो और जब दूसरों के घर से सेवा लेना हो तो संकोच रक्खो। अपरिचित का परिचय पूछने में मधुर शब्दों का प्रयोग करो। किसी से वार्ता करते समय यदि वह तुम्हारी बात न समझे तो यह न कहो कि ''आपकी समझ में नहीं आया'' बल्कि यह कहो कि ''मैं अपना भाव स्पष्ट नहीं कर सका' या ''मैं अभी समझा नहीं सका'' इत्यादि।

कुछ लोग जो अंग्रेजी जानते हैं, वे अंग्रेजी न जानने वालों के सामने या सभाओं में दूसरों को दिखाने मात्र के लिए ही अंग्रेजी बोलते हैं-वह भी अभिमान-पुष्टि का एक भोजन है।

कई व्यक्तियों के बीच में जब वार्ता चल रही हो तब बिना प्रश्न किये बीच में अपनी सम्मति न देने लगो। यदि अपने विचार प्रकट करना ही हो तो श्रोताओं से आज्ञा लेकर बोलो। विवाद में उत्तेजित या क्रोधित होकर वार्ता करते हुए अपनी दुर्बलता न प्रकट करो, शांति तथा गम्भीरतापूर्वक बात करो।

तुम अपने जीवन मे मूल्यवान वस्त्रों को या बड़े-बड़े भवनों का महत्व न दो। इस प्रकार की वस्तुओं के लोभवश सचेतन व्यक्ति का मूल्य बढ़ाकर मोहवश तुम सदविवेक का तिरस्कार न करो सदविवेक का ही मूल्य बढ़ाकर अपने को ज्ञानी समझ कर अभिमानवश तुम सत्य से विमुख न बनो।

इन्द्रियों के विषय रस में समग्र जीवन की भेंट न दे बैठना। यही विषय सुख की भूख प्राणी को पतित पापी बनाती है।

ईर्ष्या द्वेष से अपने को विवेकपूर्वक बचाते रहो। विवेक की वृद्धि के लिए विवेकी सन्तों का संग करो अथवा सन्तों के वचनों का नित्य पांच दस मिनट का अध्ययन करो।

किसी के साथ कपट छल के द्वारा अपने लाभ के लोभी न बनो क्योंकि अन्त में घोर हानि उठानी होगी।

किसी के द्वारा अपनी रुचि पूर्ति में लज्जालु बने रहो दूसरों को देने में उदार बने रहो।

किसी के क्रोध को उत्तेजक वाक्यों द्वारा न उभाड़ो, उसे शान्त करो, भयातुर व्यक्ति को सान्त्वना दो, कुटिल मनुष्यों से भी प्रिय भाषण करो।

साधन का सदुपयोग

संसार में करोड़ों मनुष्य ऐसे हैं जिनके जीवन में मानव धर्म तथा ईश्वर परमात्मा के विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठता, उन्हें अपनी कामना पूर्ति के सुख के अतिरिक्त कुछ चाहिए ही नहीं। अनेकों जन्म मानव देह धारण करते और छोड़ते हुए सुख के अन्त में न चाहने पर भी दुःख भोगते हुए बुद्धि में विचार की जाग्रति होती होती है तब किसी सज्जन के संग से जब मनुष्य को यह ज्ञात होता है कि इस संसार का रचयिता एक सर्व शक्तिमान परमेश्वर है और इस जगत को धारण करने वाला मनुष्य को पाप कर्मों से बचाने वाला, पुण्यवान बनाने वाला, लोक परलोक में अनुकूल सुख और अन्त में शान्ति देने वाला, सदा सदा से चला आने वाला एक सनातन धर्म है तब मनुष्य यह प्रश्न उठाता है कि उस परमेश्वर एवं धर्म की प्राप्ति का साधन क्या है?

हमें समझाया गया है कि यह मानव जीवन ही साधनों का घर है। सन्त वचन हैः--

साधन धाम मोक्ष का द्वारा।
पाई न जे परलोक सवाँरा।। (रामायण)

हमें जैसा भी तन मिला है साथ ही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन चित्त बुद्धि युक्त अन्तःकरण मिला है- यह

सब साधन ही है; इन मिले हुए साधनों के दुरुपयोग से अनेकों प्रकार के सुख के अन्त में हम कष्ट भोगते है; इन्हीं साधनों के उपयोग से हम शक्ति सम्पत्ति योग्यता प्राप्त करते हैं और इन्हीं साधनों के सदुपयोग से हम शाश्वत शान्ति स्वाधीनता स्वतत्रता तथा मुक्ति भक्ति आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

जिस तनरूपी साधन के द्वारा हम हिंसा चोरी व्याभिचार अनाचार करते हैं उसी तनरूपी साधन के द्वारा हम दुखी दीन जीव की रक्षा सेवा तथा दान एवं सदाचार को पूर्ण करते हैं।

जिस वाणी रूपी साधन के द्वारा हम झूठ बोलते हैं, पर निन्दा करते हैं, कठोर वचन तथा अनर्गल वचन बोलते हैं, उसी वाणी के द्वारा हम सत्य वचन तथा पराये गुणों की चर्चा, सत् चर्चा, अथवा प्रिय वचन बोलते हैं।

जिस मन के द्वारा हम मिले हुए सम्बन्धियों को तथा वस्तुओं को अपना मानकर मोही लोभी अभिमानी बनते हैं उसी मन से हम नित्य प्राप्त परमात्मा को अपना मानकर निरन्तर अनुरागी तथा विनाशी वस्तुओं से विरागी हो सकते हैं।

जिस बुद्धि से हम मिथ्या दृश्य को अथवा अनित्य देहादिक वस्तुओं को जानते हैं उसी बुद्धि रूपी साधन द्वारा नित्य परमात्मा तत्व को जान सकते हैं।

जिस शक्ति सम्पत्ति रूपी साधन से हम सुखोपयोग कर रहे

हैं उसी शक्ति सम्पत्ति रूपी साधन द्वारा हम सेवा कर सकते हैं।

जिस प्रीति रूपी साधन से हम क्षण-क्षण बदलने वाले सुख सौन्दर्य के कामी बन गये हैं उसी प्रीति रूपी साधन के सदुपयोग से हम परमानन्द परमात्मा के प्रेमी हो सकते हैं।

यह भी ज्ञान हो सका कि अविवेक वश ही मिले हुए साधनों का भोग में दुरुपयोग होता है और सद्विवेक द्वारा ही उनका सदुपयोग होता है।

सुखासक्त व्यक्ति साधनों का सदुपयोग नहीं कर पाता और कोई भी साधक धर्माचरण बिना सुखासक्ति का त्याग नहीं कर पाता। परहित का संकल्प करने वाला ही धर्माचरण का प्रेमी होता है।

हमें समझाया गया है कि दुःखी हो तो दुख देने वाली कामना तृष्णा वासना का त्याग करो और सुखी हो तो उदार होकर दूसरों की सेवा करो, सुख दो।

जिस तनरूपी साधन द्वारा बलपूर्वक किसी प्राणी की हिंसा की जाती है उसी से प्राणी की रक्षा की जाती है। जिन हाथों से बल मद में किसी निर्बल को धक्का देकर गिराया जाता है उन्हीं हाथों दया वश गिरे हुए को उठाया जाता है।

किसी भी प्रकार का बल अविवेक वश पाप वृद्धि का साधन बनता है वही बल विवेक द्वारा पुण्य प्राप्ति का साधन होता है।

जिस मन रूपी साधन द्वारा विनाशी नाम रूपों का तथा क्षणिक भोग सुखों का स्मरण होता है उसी मनरूपी साधन द्वारा अविनाशी परमात्मा का स्मरण अथवा परमेश्वर के पवित्र नामों का स्मरण जप किया जाता है। जिस बुद्धि साधन द्वारा मिथ्या जगत की भौतिक वस्तुओं का ज्ञान विज्ञान प्राप्त किया जाता है उसी बुद्धि रूपी साधन द्वारा सत्य परमात्मा का अथवा स्वयं का ज्ञान विज्ञान सुलभ कर लिया जाता है।

मानव वही है जो अनेकों प्रकार की स्वभावानुसार सिद्धि और अन्त में संसिद्धि के लिए मानव को देह, इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि आदि साधन सुलभ हैं। साधन का सदुपयोग करने वाला मानव ही साधक है। साधनों के द्वारा ही मनुष्य भोगी बना है, साधनों का सदुपयोग से ही योगी हो सकता है। जो देह को, इन्द्रियों को, मन तथा बुद्धि को कार्य सिद्धि के लिए साध लेता है वही साधु है। जो साध नहीं पाता वही असाधु है।

जो मनुष्य अपने मन की ही पूर्ति चाहता है, किसी विद्वान की सम्मति सुनता ही नहीं वह मूर्ख है। मूर्ख अपने विचार नहीं बदलता। जो मनुष्य यथार्थ बात सुनता समझता है परन्तु आचरण में नहीं ला पाता, वह मूढ़ है, अथवा जो देह में, धन में, परिवार में सम्बन्धित जनों में आसक्त रहता है, वह मूढ़ है।

मूढ़ मनुष्य सम्यक्‌दर्शी, यथार्थदर्शी, सत्यदर्शी, परिणामदर्शी

नहीं होता क्योंकि उसका मन वस्तुओं में अथवा व्यक्ति से मिलने वाले सुख में अटक जाता है।

गुरु विवेक द्वारा ही मूढ़ता का अन्त सम्भव है। मूढ़ता वश ही प्रायः साधक सत्य को नहीं सन्तोष को खोज रहा है। साधक शान्ति, मुक्ति, भक्ति प्राप्ति के लिए अपनी मान्यतानुसार कीर्तन-पाठ, जप-पूजा योगाभ्यास आदि जो कुछ भी साधना करता है उसे नित्य सन्तोष कर लेता है; इसीलिए शान्ति, मुक्ति तथा भक्ति के लिए जो कुछ तप त्याग होना चाहिए वह नहीं हो पाता।

सन्त के निर्णय से यह भी ज्ञात हो सका कि साधक में प्रायः कुछ थोड़े तप का, त्याग का अथवा ज्ञान का अहंकार बढ़ जाता है, परन्तु अहंकार का ज्ञान नहीं हो पाता।

हमें समझाया गया है कि अज्ञान में मानव सत्य को नहीं बल्कि सन्तोष को ही खोज रहा है। अनेक साधक कुछ जप की संख्या पूरी करके कोई संकीर्तन के पाठ की अवधि पूरी करके कोई तीर्थ यात्रा करते हुए, कोई पर्व स्नान तथा व्रत अनुष्ठान करके सन्तुष्ट होते रहते हैं। परन्तु आनन्द का अनुभव शान्ति की प्राप्ति तथा मुक्ति भक्ति नहीं पा रहे हैं।

यदि तुम सत्य के प्रेमी हो, सच्ची जिज्ञासा है तो सत्य की अनुभूति जब तक न हो, यथार्थ बोध जब तक न हो तब तक

जप करते हुए कीर्तन, पाठ, पूजा, तीर्थ यात्रा तथा विविध अनुष्ठान एवं तप व्रत करते हुए सन्तोष न करो।

जब तक नित्य निरन्तर प्राप्त सत्य परमात्मा का संग अनुभव न होने लगे तब तक वाह्य प्रवचन, कथा, व्याख्यान रूपी सत्संग से सन्तोष न करते रहो। जब तक आत्म-ज्ञान में परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव न होने लगे तब तक वेद, शास्त्र की जानकारी को ज्ञान मान कर सन्तुष्ट न बनो।

हमें यह भी समझाया गया है कि परमात्मा के साकार रूप के अनुपम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य अथवा अजेय ऐश्वर्य के सम्बन्ध में पढ़-सुनकर जिस प्रकार ध्यान करते हो, वह ध्यान नहीं है, यह तो सुने हुए के अनुरूप विचार है।

ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान से देखा जाता है। जिस प्रकार किसी यन्त्र को, किसी बहुमूल्य वस्तु को किसी मनोहर रूप को तुम ध्यान से देखते हो--उसका ध्यान नहीं करते हो, उसी प्रकार जो कुछ अहंकार के भीतर है तथा जो कुछ अहंकार से बाहर है, जिस आश्रय में अहंकार 'मैं' और 'मेरा' की सीमा से आबद्ध हो रहा है उसे ज्ञान में देखो ध्यान में ठहरो। ज्ञान में देखने के लिए कुछ नहीं है केवल शान्त होना है, शून्य होना है, असंग होना है और ज्ञान देखने के लिए ध्यान में जाग्रत रहना है। ध्यान ज्ञान में जाग्रति है अज्ञान में निद्रा है स्वप्न है। जो स्वप्न में है, निद्रा में

है, अज्ञान में है वही अहंकार है। अहंकार लोहे की दीवाल से भी अधिक कठोर है अहंकार जब ज्ञानी तपस्वी त्यागी बन जाता है तब और भी घातक बन जाता है। अहंकार ही हिंसक है।

अहंकार भयानक रोग है यही प्रभु का विरोधी है। अहंकार के भीतर जितना कुछ एकत्रित है उतना ही यह सबल है। अहंकार में ही सारी दौड़ भाग है।

अहंकार सदा से दरिद्र है, भिखारी है, यह मांगता ही रहता है, यह संसार में बहुत कुछ पाकर भी रंक है, रिक्त (खाली) है वाञ्छा युक्त ही है। अज्ञान में ही अहंकार का जीवन है।

हमें यह भी बताया गया है कि मनुष्य पाप में नहीं है--अज्ञान में है। अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान में होती है स्वयं को न जानना ही अज्ञान है आत्म अज्ञान ही एक मात्र मानव का दुःख है। दुःख का अन्त आत्मज्ञान में ही होता है। मनुष्य के कष्ट अनेक हैं पर दुःख एक ही है। कष्टों के कारण ही मनुष्य अनेक प्रकार सुविधायें चाहता है। सुविधा से कष्ट दूर हो जाता है परन्तु जीवन का दुःख निवृत्त नहीं होता। कष्टित व्यक्ति को अनुकूल सुविधा से सुख प्राप्त होता है पर शान्ति नहीं मिलती।

साधक को यह न खोजना चाहिए कि शान्ति कहां मिलेगी प्रत्युत यह जान लेना चाहिए कि भीतर अशान्ति क्यों है। जहाँ सुखोपभोग की तृष्णा है, लोभ है, द्वेष है, देहाभिमान है वही

अशान्ति है।

ज्ञान में देखते हुए जो साधक अहंकार में, ममता तथा कामना से रहित होता है वही शान्ति में होता है।

परमात्मा नित्य निरन्तर प्राप्त है इसीलिए जो परमात्मा के लिए उपस्थित है उसी को परमात्मा नित्य उपस्थित अनुभव होता है। प्रायः हम अनेक साधक धन के लिए, मान के लिए, संयोग-भोग के लिए उपस्थित रहते हैं परन्तु परमात्मा के लिये जहाँ उपस्थित होना चाहिए वहाँ उपस्थित नहीं होते।

परमात्मा की अनुभूति स्वयं में शान्त होने पर ही होती है। जो स्वयं में है वही स्वस्थ है। जो अपनी प्रसन्नता किसी अन्य वस्तु-व्यक्ति पर निर्भर करता है वही परतन्त्र है। जो किसी अन्य का आश्रय नहीं लेता वही परमाश्रय को प्राप्त देखता है।

इन्द्रिय दृष्टि जगत दृश्य के आगे नहीं जा सकती। बुद्धि दृष्टि से परिणाम देखा जाता है। स्वयं को जान लेने पर सत्य को जाना जाता है।

यथार्थ दर्शन ज्ञान रूपी प्रकाश में अन्तर दृष्टि द्वारा, दिव्य दृष्टि द्वारा होता है। जो प्रीति पूर्वक परम प्रभु का भजन करता है उसे प्रभु बुद्धि योग प्रदान करते हैं। परम प्रभु को अपना जान करके और जगत के सभी प्राणियों को प्रभु का मान करके, प्रभु के नाते सभी का हित चाहना, यथा-शक्ति सभी की सेवा में

सावधान रहना भजन है। प्रभु के नित्य सम्बन्ध को भूले रहकर संसार के सम्बन्धियों से अपनत्व का नाता जोड़े रहकर जप, कीर्तन, पूजा-पाठादि रूप में भजन भी भोग है।

प्रायः हम लोग वेद-शास्त्र पढ़ने वालों को पण्डित मानते हैं, परन्तु भगवान के मत में वही पण्डित है जो शोक मोह से रहित है। भगवान के मत मे जो इन्द्रियों के विषय सुख में आकर्षित नहीं होता वही वीर है। जो अहंता ममता फलासक्ति का त्यागी है वही संन्यासी है। घर छोड़ने वाला अग्नि न छूने वाला संन्यासी नहीं है। जो संगासक्ति से रहित है, वही मुक्त है, जो भगवान को अपने से निरन्तर अभिन्न अनुभव करता है वही भक्त है।

भगवान के मतानुसार जो सांसारिक वैभव सुखों में आकर्षित नहीं होता, वही विरागी है। जो सदा से प्रेम करने वाले भगवान को सर्व भावेन प्रीति पूर्वक अपना मानता है वही अनुरागी है। जो कर्तव्य पालन में, स्वधर्म पालन में, सेवा व्रत में आने वाली प्रतिकूलताओं को धैर्यपूर्वक सहन करता है वही तपस्वी है। जिस पर सांसारिक संयोग-वियोग, लाभ-हानि, मान-अपमान का प्रभाव नहीं पड़ता, जो समस्थित है, शान्त है, वही नित्य युक्त योगी है।

हमें यह भी समझाया गया है कि अज्ञान में शान्ति के लिये किया गया प्रयत्न अशान्ति में ही ले जाता है। अभय के लिये

किया गया प्रबन्ध भय में ही ले जाता है। रक्षा के लिए किया गया आश्रय, सुरक्षित नहीं रख पाता है। अज्ञान में स्वस्थ रहने के लिए किया गया आश्रय, सुरक्षित नहीं रख पाता। अज्ञान में स्वस्थ रहने के लिए किया गया भोजन रोगी बना देता है। सुखी रहने के लिए की गई सारी व्यवस्था दुःख में ही ले जाती है। अज्ञान में किया हुआ सम्मान अभिवादन अर्थात प्रणाम अपराध बन जाता है।

अपने गुरुजनों को, बड़ों को समयानुसार कभी दण्डवत प्रणाम करो, कभी मस्तक झुकाकर, कभी चरणस्पर्श करते हुए प्रणाम करो, कभी दूर से ही हाथ जोड़कर और कभी मन ही मन प्रणाम कर लो।

जब कभी बड़ी सभा मे गुरुदेव बैठे हों या कथा प्रवचन कर रहे हों अथवा किसी सवारी में बैठकर यात्रा कर रहे हों तब चरणस्पर्श करना, निकट जाकर प्रणाम करना अपराध होगा। जिस अभिवादन से, प्रणाम से उन्हें बाधा हो अथवा कथा प्रवचन में विक्षेप हो श्रोताओं की एकाग्रता में बाधा हो वह अभिवादन अथवा प्रणाम कदापि न करो। दूर से ही मस्तक झुका दो मन ही मन प्रणाम कर लो।

अज्ञान में की गई पूजा स्तुति सेवा भी अपराध बन जाती है इसीलिए गुरु निर्देश है कि तुम ऐसी पूजा प्रार्थना पाठ अथवा

साधना पद्धति का पक्ष छोड़ दो जिससे दूसरों के सुख में तथा सुविधा में बाधा पड़ती हो।

किसी मन्दिर में साधक मौन होकर ध्यान में शान्त होना चाहता है, वहीं पर दूसरा साधक उच्च स्वर से पाठ करने लगता है तीसरा साधक घण्टा बजाने लगता है, चौथा साधक उच्च स्वर से नाम कीर्तन करते हुए नाचने लगता है--यह सब अविवेक पूर्वक अपने-अपने अहंकार को तृप्त करने की पद्धतियाँ हैं, साधनायें हैं जो विवेकी साधक हैं वे दूसरों की सुविधा का ध्यान रखकर प्रत्येक कर्म करते हैं।

हमें समझाया गया है कि तुम सामूहिक प्रार्थना करो। किसी के साथ समस्वर से ग्रंथ मन्त्र पाठ करो, परन्तु कहीं पर ऐसा न बोलो, ऐसा न हँसो, उस प्रकार न चलो, न बैठो, न उठो जिससे दूसरों को कष्ट हो।

किसी से मिलो तो उनकी मनः स्थिति का अध्ययन कर लो, उससे समय लेकर मिलो, जितना समय लिया हो उससे अधिक न बैठो, यदि वह स्वयं ही तुम्हारी उपस्थिति चाहता है तो रुको किन्तु तुम दूसरों को अपनी प्रसन्नता के लिए अपने पास बैठाना चाहते हो तो उसकी मनःस्थिति समझ लो तभी अपनी अनुकूलता की पूर्ति करो। दूसरों से सम्बन्धित जो कुछ भी करो उसमें दूसरे की अनुकूलता का तथा हित का पक्ष लेकर करो।

जिस कर्म का सम्बन्ध अपने प्रभु से हो उस साधना, उपासना आराधना में प्रभु की आज्ञा का ही पालन करो।

किसी धर्म का सम्बन्ध अपने आपसे ही हो तब अपने हित का ध्यान रखकर ही प्रत्येक कर्म करो। किसी को भोजन कराना है तो उसकी रुचि का पक्ष लेकर भोजन कराओ। किसी के घर जाना हो तो अपनी प्रसन्नता के लिए न जाओ उसकी रुचि देखकर जाओ उसकी परिस्थिति मनकी स्थिति का अध्ययन करते हुए किसी के यहाँ जाओ अपने सन्तोष के लिए किसी के समीप बैठकर समय न काटो, तुम्हारे बैठने से दूसरों को प्रसन्नता होती है तभी बैठो, तुम्हारी बातें उसे प्रिय लगती हों तभी बात करो, तुम्हारा हास्य दूसरों को प्रिय लगता है, तभी हँसों।

यदि तुम्हारी पूजा से पूज्य प्रसन्न नहीं होता तो ऐसी पूजा भी न करो। तुम्हारे हार पहनाने से पूज्य की शोभा बढ़ती है तो हार पहिनाओ, चन्दन तिलक लगाओ यदि तुम्हारे हारों से चन्दन से, तिलक से शोभा बिगड़ती है तो कदापि ऐसी पूजा न करो।

जिसका अन्तःकरण अशुद्ध है वह अभिमानी अहंकार ही नरक का दुःख भोगता है। अहंकार को ही अज्ञान में हानि से, अपमान से, वियोग से मृत्यु से भय लगता है।

कर्म योग बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती। जिस कर्म के पीछे फल-भोग का लालच नहीं रहता, जो प्रभु के नाते प्रभु की दया से मिली हुई देहादिक वस्तु एवं शक्ति द्वारा परहित भाव से किया जाता है वह कर्म योग का साधन हो जाता है। निष्कामता से ही कर्म योग की सिद्धि होती है। लोभी, अहंकारी, महत्वाकांक्षी, सुखासक्त कर्मयोगी नहीं हो पाता, वह कर्म भोगी बना रहता है।

जितना छोड़ा जाता है उतना ही मुक्ति मिलती जाती है जितना लिया जाता है उतना ही बन्धन बढ़ता जाता है।

निष्काम होकर सर्व हितकारी प्रवृत्ति में धर्म की पूर्णता है। धर्म की पूर्णता में योग पूर्ण होता है। योग की पूर्णता में सत्य का बोध होता है। बोध की पूर्णता में प्रेम पूर्ण होता है।

जो मिले हुए बलों का दुरुपयोग न करके सेवा से सदुपयोग करता है वही पूर्ण धर्मात्मा होता है। सांसारिक नाम रूप तथा सुख में आसक्ति रहने तक धर्म पूर्ण नहीं होता क्योंकि मन अशुद्ध रहता है।

भगवान का निर्णय है कि जो साधक किसी से द्वेष नहीं करता, सभी के प्रति मित्र भाव रखता है, जिसका हृदय करुणा से युक्त है, जो ममता अहंता रहित है, जो प्राप्त में संतुष्ट है, जो आत्मा से युक्त है, जिसने मन बुद्धि को मुझ परमात्मा में अर्पित

कर दिया है, जो शुभ अशुभ फलों का त्यागी है, जो शोक से, कामना से रहित है जो सम शान्त रहता है जो किसी की अपेक्षा नहीं रखता, पवित्र रहता है कार्य करने में दक्ष है जो व्यथित नहीं होता है, जिसकी मति चंचल नहीं है ऐसा भक्त मुझे प्यारा है।

जो दूसरों को दुःखी करता है जो मान से उन्मत्त हो जाता है अपमान से अशान्त होता है नयी-नयी योजनायें बनाता है जो असन्तुष्ट रहता है, भय, क्रोध, लोभ से जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, जो पक्षपाती है, दुखी रहता है, द्वेष करता है, जो मोही है वह परम प्रभु के प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता। भोग की रुचि का अन्त होने पर योग सिद्धि मिलती है। जिससे योग होना है वह अपने से भिन्न नहीं है, अपने में ही है, अभी है, वहीं है, जहाँ हम हैं।

हम जहाँ हैं जिस परिस्थिति में हैं उससे तृप्त न होने से अशान्त हैं। हम कुछ पाना चाहते हैं किसी अन्य जैसा होना चाहते हैं इसी लिए अशान्त हैं।

शान्ति के लिए हम जितनी भागदौड़ कर रहे हैं, जितने प्रयत्न कर रहे हैं उतने ही अशान्त हैं। हम उसे अपना मानते हैं जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है उसी के छिन जाने के कारण अथवा स्वेच्छानुसार न मिलने के कारण अशान्त हैं।

कभी कभी किसी स्वच्छ उपवन में अथवा पवित्र तीर्थ स्थल

में किसी गिरि गुहा में, या मनोहर दृश्य दर्शन में कुछ समय तक चित्त एकाग्र होता है तब उसे हम शान्ति मान लिया करते हैं। परन्तु जो किसी वस्तु के द्वारा व्यक्ति के द्वारा मिलती है वह शान्ति नहीं है।

शान्ति तो शाश्वत है सत्य में है बाहर नहीं अन्तर में ही है, वह ग्रहण में नहीं सर्व त्याग से ही सुलभ होती है। पर में नहीं स्वयं में ही है।

हमें सावधान किया गया है कि इस देह रूप ढाँचे के भीतर 'मैं' है खोज करो। 'मैं' की खोज में परमात्मा की सत्ता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा।

जीवन ही तो परमात्मा है जीवन के बीच में जन्म-मृत्यु की गति है। जन्म मृत्यु से जीवन ग्रसित नहीं है। चन्चल मन के पीछे ही स्थिर चिन्मात्र सत्ता है, वही आत्मा है विनासी के पीछे ही अविनासी है।

अन्धकार के पीछे ही प्रकाश है। विषाक्त परिस्थिति के पीछे अमृत है। मृत्यु के पीछे ही अमरत्व है। जड़ के पीछे ही नित्य चेतन है।

अज्ञान में मोही मनुष्य अपनी मानकर भोगता है। त्यागी अहंकार में, अपनी मानकर छोड़ता है।

ज्ञान में सावधान साधक प्रभु की जानकर देखता है। प्रेम में

परितृप्त भक्त प्रभु के अतिरिक्त न कुछ मानता है न जानता है।

जो अहंकार से शून्य है वही प्रेम से पूर्ण होता है। स्वयं और प्रभु के मध्य में दूरी मिट जाना ही प्रेम है।

हमें गुरु प्रवचनों से ज्ञात हो सका कि व्यापक सत्य परमात्मा को जानने के लिए शान्त होना, शून्य होना आवश्यक है पूर्ण मौन मे जो शेष रहता है, जो नित्य निरन्तर है वही परमात्मा है।

घर परिवार छूटने पर भी विचार तथा बीती हुई घटनाओं की स्मृति से छुटकारा नहीं मिलता। अतः विचारों का त्याग ही त्याग है। अहंता ममता का ही त्याग शान्तिदायी त्याग है।

विचारों के प्रति साक्षी होने पर स्वतन्त्रता सुलभ होती है। सभी प्रकार के भावों के प्रति साक्षी होने पर सरलता आती है।

अभिमान शून्य होने पर, शान्त रहने पर केवल चैतन्य स्वरूप में बुद्धि के स्थिर होने पर ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं। हमें यह भी समझाया गया है कि ज्ञान का आलोक ध्यान से सुलभ हो जाता है।

विचारों वृत्तियों को छोड़कर चेतना में प्रतिष्ठित होना ध्यान है। चेतना के द्वारा ही विचारों का प्रवाह दिखता है। प्रवाह को द्रष्टा होकर चेतन में स्थित होना है। मनुष्य के भीतर ज्ञान ही उसका स्वरूप है।

हम सबके सामने जहाँ तक बन्धन हैं, कष्ट हैं जहाँ कहीं

हम भ्रमित हैं, अनाचारी है, व्याभिचारी है, जब हम दुःख से घिरे हैं तब तक अज्ञान में ही हैं।

हमें दिखाया गया है कि प्रायः अज्ञानवश मनुष्य बाहर से परिचित है भीतर से अपरिचित है। किसी वृक्ष की शाखा पल्लव से परिचित है, जड़ों से अपरिचित है। दृश्य से परिचित है, अदृश्य से अपरिचित है। अज्ञान में ही मनुष्य धन लाभ को देखकर हर्षित होता है। अन्तर में बढ़ने वाले लोभ को नहीं देख पाता। संयोग-भोग से सुखी होता है पर परिणाम में मोहासक्ति को नहीं देख पाता। मोहासक्ति के रहते मोह नहीं मिटता, किसी प्रकार के लोभ से तृष्णा नहीं मिटती और वस्तु के प्रति अपनत्व के रहते लोभ नहीं मिटता। लोभ, तृष्णा और मोहादि विकारों से मुक्त हुए बिना प्रभु के प्रति प्रेम पूर्ण नहीं होता।

असत् के संग से देहाभिमान की उत्पत्ति होती है असत् के संग के कारण ही मानव सत्संग से विमुख हुआ है। राग से काम, काम से भोगेच्छा, भोगेच्छा से तृष्णा, तृष्णा से लोभ बढ़ता जाता है।

असत् अनित्य विनाशी जड़ वस्तु का ज्ञान जिससे होता है वही सत् है, अविनाशी नित्य चेतन परम तत्त्व है। सत्य परमात्मा से विमुख होने के कारण मद भिन्नता और भयवश मानव संघर्ष से सन्तापित है।

सत्संग से विवेक प्राप्त होता है। विवेक में ही प्रकृतिपुरुष, पुरुषोत्तम का ज्ञान होता है। विवेक द्वारा ही क्षेत्र की समुचित व्यवस्था होती है।

मनुष्य को क्षेत्र सुलभ है परन्तु व्यवस्था की कमी है। सत्य, शान्ति और आनन्द सुलभ हैं प्राप्त ही हैं परन्तु दृष्टि नहीं खुली है। विचार शान्त होने पर, शून्य होने पर विवेक काम करता है।

प्रचार बहुत हो रहे हैं पर विचार में असावधानी है। कुछ विद्वान विचार के प्रसारक हैं पर दृष्टि उपचार में प्रमाद हैं। दर्शन के लिए दृष्टि का उपचार आवश्यक है।

दिव्य चक्षु खोलने के लिए शान्त रहना होगा। विचारों के प्रवाह में न बहकर द्रष्टा होकर मौन रहना होगा। कर्त्ता न बनकर साक्षी होकर देखना होगा।

कदाचित प्रारब्धवश अनिवार्य संकट से घिर जाओ, कोई कष्ट असह्य प्रतीत होने लगे तब उपवास करो और अन्तरस्थ प्रभु से प्रार्थना करते रहो।

प्रार्थना असीम से सम्बन्धित करती है। जो दुखी होकर अपना दोष नहीं देखता, जो निर्धन होकर अपनी इच्छाओं को नहीं समेटता, अर्थात् प्रतिकूलता की वेदना को सहन नहीं करता, जो धनी होकर दान नहीं करता, जो अवकाश पाकर आत्मा-परमात्मा के योगानुभूति की साधना में तत्पर नहीं रहता,

वह महा मूढ़ है, अभागी है, उसका जीवन अनर्थमय है।

जो कृपण है, कठोर है, भेददर्शी है, संशययुक्त है, अहंकारी अभिमानी है, वह भक्त नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द सागर में इस 'मैं' को घट के समान देखो।

सब में परमात्मा ही है यह निश्चय ज्ञान है उसी के निरन्तर अनुभूति को विज्ञान कहते हैं।

हमें समझाया गया है कि ध्यान में जब कोई विचार न हो, किसी की स्मृति न हो, कोई कल्पना न हो, उस शून्य स्थिति में परमात्मा की अनुभूति होती है। चेतना की पूर्ण जाग्रति में परमात्मा की अनुभूति होती है।

जहाँ विचार, कल्पनायें, स्मृतियाँ समाप्त होती हैं वहीं दर्शन आरम्भ होता है।

जहाँ हमारे अतिरिक्त किसी अन्य का प्रवेश नहीं है वहीं हमारी आत्मा है।

जहाँ चेतन स्वरूप के बोध का अभाव है वही मन है। जहाँ मन का अभाव है वहीं चेतन स्वरूपय आत्मा का बोध होता है।

जहाँ मैं नहीं है, अहंकार नहीं है वहीं परमात्मा है। अहंयुक्त आत्मा ही जीव है। अहंकार से मुक्त आत्मा ही परमात्मा है।

साधक को विचारों में नहीं रहना है बल्कि उसमें रहना है जो विचारो के बीच विद्यमान है।

सन्त वचन

परमार्थिक उन्नति के निम्न सात नियमों का पालन करोः-

(१) अपने गृह सम्बन्धी कार्यों में आनन्द न मानो
(२) व्यर्थ वार्ता में सुख न लो
(३) निद्रा में अधिक समय न काटो
(४) प्रपंची जनों के साथ समय न बिताओ
(५) दुर्वासना के वश में होकर न रहो
(६) दुष्टों की संगति से बचते रहो
(७) साधना समाधि में अल्प सफलता पाकर सन्तुष्ट न हो जाओ।

परम लाभ के लिएः-

(१) सदाचार का ही पालन करो
(२) सत्पुरुषों का संग करो
(३) किसी की निन्दा न करो
(४) अपनी निन्दा सुनकर क्षोभ न करो
(५) अपनी प्रशंसा सुनकर हर्षित न होओ
(६) अमानी रह कर मान दो
(७) स्मृति और प्रज्ञा को जाग्रत बनाये रहो
(८) भोग सुख में, धन में, अधिकार सम्मान में सन्तोष न करो किन्तु प्रभु के ध्यान में, ज्ञान में, सद्‌गुण विकास में, दान में, स्वाध्याय में, तप त्याग में कहीं सन्तोष न करो।

जिज्ञासा

इस जग में सत्स्वरूप की खोज लगाने वालों से पूछो-जीवन क्या है?
सेवा को त्याग प्रेम को पूर्ण बनाने वालों से पूछो-साधन क्या है?

है कृपा उसी परमेश्वर की जब संतों की संगति मिलती-मिलता विवेक।
श्रद्धा के सहित सन्त संगति में आने वालों से पूछो-प्रवचन क्या है?

वैसे तो शास्त्रों वेदों के विद्वान अनेकों मिलते हैं-पर शान्त कौन है?
विद्या द्वारा उस अमृतत्व के पाने वालों से पूछो-यह तन क्या है?

पर उपदेशक तो कितने ही कुछ पढ़ सुन करके बन जाते-आचरण नहीं।
कथनानुसार अपना कर्तव्य निभाने वालों से पूछो-निरसन क्या है?

जब कभी अनेकों मतवालों की अपनी-अपनी छनती है-सबकी सुन लो।
फिर भेद भ्रान्ति से रहित विवाद मिटाने वालों से पूछो-मन्थन क्या है?

निष्पक्ष विवेकीजन चिन्मय जीवन का अनुभव करते हैं-अविचल मति से।
जो आत्म तृप्त, आनन्दामृत बरसाने वालों से पूछो-प्रशमन क्या है?

हरिनाम कीर्तन के प्रेमी तब तक विश्राम न पाते हैं-यदि हैं सकाम।
तुम निष्कामी प्रभु की सुकीर्ति के गाने वालों से पूछो-सुमिरन क्या है?

हमसे तुमसे चाहे जिससे पर दोषों की चर्चा सुन लो-गुण गर्व छिपा।
अति विनयी होकर अपने दोष हटाने वालों से पूछो-वन्दन क्या है?

जो वीत राग हैं जिन्हें मानधन भोग सुखों की चाह नहीं-जो नित्यमुक्त।
वह ''पथिक'' हितैषी सत परमार्थ दिखाने वालों से पूछो-दर्शन क्या है?

जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते!
पथ में चलते गिर गिर जाते!

अन्धकार में रत्न समझ कर कंकड़ पत्थर ही चुनते हैं!
मूल्य न मिलता जब उनका कुछ तब हम अपना सिर धुनते हैं!
काल कर्म को दोष लगाते! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। १।।

मिले हुए घर धन स्वजनों को बिना विचारे अपना कहकर!
भोग जनित सुख के पीछे ही जीवन में कितने दुख सहकर।
लोभ मोह अभिमान बढ़ाते! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। २।।

अविनाशी अपना जीवन है हम कहते हैं मरना हमको!
देख न पाते अपने सम्मुख जो कुछ भी है करना हमको!
यद्यपि गुरुजन हैं समझाते ! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। ३।।

सुख में हम सेवा कर सकते पर बन जाते उसके भोगी!
दुःख में त्याग और तप द्वारा हो सकते हैं सुन्दर योगी!
किन्तु समय खोकर पछताते ! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। ४।।

निज स्वरूप को जान न करके मुग्ध हुए नश्वर काया में!
मैं मेरी कह कहकर नटवत नाच रहे हरि की माया में!
अनजाने में कष्ट उठाते! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। ५।।

जो अज्ञान विनाशक है वह ज्ञान स्वरूप हमारा गुरु है!
जिससे हमको गुरुता मिलती है अन्तिम यही सहारा गुरु है!
वहीं 'पथिक' हम ठोकर खाते! जब हम ज्ञान प्रकाश न पाते ।। ६।।

भगवान तुम्हारे चरणों में

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल-पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे बैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझपर भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
चाहे कष्टों ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अँधेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
चाहे काँटों में मुझे चलना हो, चाहे अग्नि में मुझको जलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
तुमहीं सब मय यह ज्ञान रहे, मुझमें न कहीं अभिमान रहे।
प्रभु मेरे तुम यह गान रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों मे।
यह विनती है पल-पल छिनछिन, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।

साहित्य मंगाने का पता

डा० ताराचन्द्र क्लीनिक
28 विधान सभा मार्ग
निकट बार्लिंगटन चौराहा, लखनऊ
मो - 9415062640
फोन - 0522-4048520

❖ ❖ ❖

स्वामी नानानन्द
संत पथिक साधना आश्रम
हरिपुर, रायवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल)
फोन - 0135-2485725

डा० स्वामी अखिलेन्द्र
बंगाली टोला, बेलन बाजार
मुंगेर (बिहार)
फोन - 06344-222232

❖ ❖ ❖

अवधेश नारायण अग्रवाल
अग्रवाल गिफ्ट गैलरी
चौक, बहराइच (उ०प्र०)
फोन - 05252-237977
मो - 9336881137
9453017520

❖ ❖ ❖

भक्त बद्रर्स
श्री रामकृष्ण पार्क, अमीनाबाद, लखनऊ - 226 018
फोन - 0522—6570333, 6531333 मो. — 9415418811

❖ ❖ ❖

मध्य प्रदेश के जो पाठक **श्री स्वामी पाथिक जी** का साहित्य लेना चाहें कृपया नीचे लिखे पते पर सम्पर्क करें:—
श्री विष्णु जी अग्रवाल
अग्रवाल बुक सेलर, एम.आई.जी.—21, दीन दयाल पुरम
पो०—खण्डुआ—पिन—450001(म०प्र०)
दुकान मो०- 9407455034 निवासः मो०- 09407457977

Website : www.pathikji.net

जो श्रद्धालु साधक संत पथिक जी के इन प्रकाशनों को समय-समय पर प्रकाशित करवाने में अपना सहयोग देना चाहें और अपने प्रियजनों का नाम भी छपवाना चाहें तो वह श्रद्धालु सहयोग राशि 'हर्ष कुमार सूरी' के नाम से खाता संख्या **CBS A/c 0293000109120890** पंजाब नैशनल बैंक, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ में सीधे डाल सकते हैं। ईश्वरीय कार्य में आपका सहयोग अविस्मरणीय रहेगा। इस प्रक्रिया में बैंक कोई कमीशन नहीं लेगा।